प्रस्तावना

कन्याओं के लिये मातृ-कला का विषय अत्यन्त महत्व का है। हमारे देश में शिशु-जीवन के भयंकर नाश का विशेष कारण इस विषय की अनभिज्ञता है। जहाँ गरीबी अन्य सब कारणों का मूल कारण है वहाँ मातृ-कला की जानकारी न होना भी बहुत बड़ा कारण है। इसी कारण हमारे प्रान्तीय शिक्षा बोर्डों द्वारा इस विषय को कन्याओं के लिये पाठ्य-विषय निर्धारित किया गया है।

इस संक्षिप्त पुस्तक में बोर्ड द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रमानुसार ही विषय का विवेचन किया गया है। इस कारण यहाँ विषय के केवल मूल सिद्धान्तों ही का वर्णन किया गया है। अधिक जानकारी के लिये बड़ी पुस्तकों का अवलोकन आवश्यक है। लेखक की शिशु-पालन नामक पुस्तक में, जो कि नागरी प्रचारिणी-सभा काशी द्वारा प्रकाशित की गई है, विषय का विस्तार-पूर्वक वर्णन है।

इस विषय को पढ़ाते समय अध्यापकों को विषय का महत्व भली भाँति बताना चाहिये। और यथासंभव व्याख्यान के साथ प्रदर्शन करना चाहिये। बच्चों के वस्त्र, दूध पिलाने की शीशी, दूध को उबालने के उपकरण, खिलौने आदि छात्राओं को दिखाने चाहिये। बच्चों के किसी अस्पताल में छात्राओं को ले जाकर उनको बच्चों को दूध पिलाना, उनको नहलाना, वस्त्र बदलवाना, रुग्णावस्था में सुश्रूषा तथा देख-भाल, दवा पिलाने की विधि आदि दिखाना बहुत उपयोगी प्रमाणित होगा, और इस विषय में छात्राओं का उत्साह बढ़ेगा।

इस पुस्तक का विषय जातिनिर्माण के लिये अनिवार्य है। देशोत्थान के लिये वह अत्यन्त महत्वशाली है। जो आज शिशु हैं वे ही आगे चल

कर देश की नौका के कर्णधार होंगे। देश का भविष्य इन शिशुओं पर ही निर्भर करता है। जो जाति शिशुओं के पालन-पोषण, संवर्धन तथा शि॰ पर यथोचित ध्यान नहीं देती और पूर्ण प्रबन्ध नहीं करती उसका भविष्य उज्ज्वल नहीं हो सकता।

यह विषय प्रत्येक पाठ्य प्रणाली में कन्याओं के लिये अनिवार्य हो चाहिये। और इसके महत्व को समझकर इसके पठन-पाठन तथा क्रियात्मक शिक्षा का प्रबंध होना चाहिये। विशेष आवश्यकता इस बात की है कि विषय केवल क्लास और लैक्चरों में ही परिमित न रहे। उसका प्रदर्शन तथ प्रयोगों की विधि में कन्याओं को दक्ष बनाया जाय। बच्चों के लिये विभिन्न भोजन बनाना, बीमार होने पर उनकी सुश्रूषा करना, वस्त्र बदलवान आदि ऐसी बातें हैं जिनमें उनको दक्ष बनाना आवश्यक है। जहाँ संभव हो सके वहाँ बच्चों के अस्पतालों में विद्यार्थिनियों को भेज कर काम करवाना चाहिये।

शिक्षकों तथा शिक्षा बोर्डों को इस ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। इस पुस्तक में सूक्ष्म रूप से केवल मूल सिद्धान्तों का वर्णन है। किन्तु विषय का महत्व देखते हुये जनता में उसके प्रचार की बहुत आवश्यकता है।

मुकुन्द स्वरूप वर्मा

विषय-सूची

मातृ-कला

पहला अध्याय

नवजात शिशु

नवजात शिशु अत्यन्त कोमल और निरीह प्राणी होता है। वह अपने जीवन की प्रत्येक आवश्यकता के लिये दूसरों पर निर्भर करता है। मल मूत्र त्यागने, सोने और रोने के अतिरिक्त वह कुछ भी नहीं कर सकता। भूख लगने पर वह भोजन भी केवल रोकर ही माँग सकता है। संसार में किसी भी जन्तु का बच्चा इतना निस्सहाय नहीं होता, जितना मनुष्य का। यदि बच्चे की माता या दूसरा अभिभावक उसकी आवश्यकताओं को समझ कर पूरा न करें तो उसका जीना ही असंभव है।

अतएव बच्चे की माता का यह कर्त्तव्य है कि वह स्वयं ही बच्चे की आवश्यकताओं को समझे और उसको उचित रीति से यथासमय पूरा करे। बच्चे का पालन-पोषण बहुत ही बड़े उत्तरदायित्व का काम है। उसका सारा जीवन ही उसके पालन-पोषण की विधि पर निर्भर करता है, जो एक बहुत बड़ी कला है। इस कला में पूर्णतया दक्ष होना प्रत्येक माता का कर्त्तव्य है। संसार में बच्चा क्या बनेगा तथा उसका जीवन कैसा होगा वह बहुत कुछ इस कला ही पर निर्भर करता है। इससे इस कला का महत्व मालूम होता है। बच्चे के संसार में आने से पूर्व माता को उसके जीवन के संबंध में पूर्ण

ज्ञान होना चाहिये। उसको जानना चाहिये कि बच्चे की क्या आवश्यकतायें होती हैं और उनकी किस प्रकार पूर्ति की जाय कि बच्चे को सबसे अधिक लाभ पहुँचे। कौन-कौन सी वस्तुएँ और कर्म बच्चे को लाभ पहुँचाते हैं तथा किनसे हानि होती है। बच्चे का भोजन संबंधी ज्ञान अत्यन्त अनिवार्य है। हमारे देश में जितने बच्चों की मृत्यु होती है, उनमें से ६० प्रतिशति की पाचन संबंधी विकारों के कारण ही होती है। इसी प्रकार बच्चे के स्नान, वस्त्र, शयन इत्यादि का ज्ञान भी आवश्यक है। साथ ही बालकों के साधारण रोगों का भी थोड़ा ज्ञान होना चाहिये जिससे बच्चे के अस्वस्थ होते ही माता यह पहिचान ले कि बच्चा रोगग्रस्त हो गया है और तुरन्त किसी अनुभवी डाक्टर के परामर्श से उसकी उचित चिकित्सा का प्रबन्ध कर सके। हमारे देश में कितने बच्चों का जीवन केवल इस कारण नष्ट होता है कि उनकी चिकित्सा का आयोजन उस समय किया जाता है जब रोग काफी बढ़ चुकता है।

प्रत्येक देश का भविष्य उसके बच्चों पर निर्भर करता है। जो आज शिशु हैं वे ही कल बालक होकर युवा होंगे और समय आने पर देश के संचालन का भार ग्रहण करेंगे। कोई राजनैतिक कार्य-क्षेत्र में काम करेगा तो कोई विज्ञान में अपना कदम बढ़ायेगा; तथा बड़े-बड़े आविष्कार करेगा। बड़े-बड़े उद्योग-धन्धों का संचालन करने वाले और देश को सुसम्पन्न और समृद्ध बनाने वाले भी इन्हीं में से निकलेंगे। इन्हीं में से ऐसे लाल प्रगट होंगे जो देश का नाम ऊँचा करेंगे। इसलिये इन शिशुओं का उचित पाल-पोषण, उनको अकाल मृत्यु के मुख से बचाना, उनकी समुचित शिक्षा का प्रबन्ध करना जिससे उनमें छिपी हुई शक्तियों का पूर्ण विकास हो, उनकी शारीरिक उन्नति के लिए उचित आयोजन करना तथा उनके जीवन

से संबन्ध रखने वाली अनेक बातों का पूर्ण प्रबन्ध करना देश का कर्त्तव्य है, न केवल माता ही का। किन्तु बच्चे का उचित पालन-पोषण माता ही द्वारा हो सकता है। माता का स्थान कोई भी संस्था नहीं ले सकती। इस कारण देश की ओर से माता की पूर्ण शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिये। ऐसे स्कूल होने चाहिये जहाँ स्त्रियों को सन्तानोत्पत्ति तथा संतान-पालन के संबन्ध में पूरी शिक्षा दी जाय। न केवल यही वरन इन संस्थाओं द्वारा ऐसा आयोजन भी किया जाना चाहिये कि प्रसव के पश्चात् भी बच्चे के पालन-पोषण में माता को प्रत्येक प्रकार की समुचित सहायता मिलती रहे।

यद्यपि यह छोटी सी बात मालूम होती है तथापि यह बड़े महत्व का है। इससे देश के उत्थान और पतन, उन्नति तथा अवनति का संबन्ध है। योरुप, अमरीका आदि प्रगतिशील देशों ने इस बात के महत्व को समझा है और उन्होंने असाधारण प्रयत्नों द्वारा देश में बच्चों के जीवन की रक्षा की है। इन देशों में बालमृत्यु-संख्या इतनी कम हो गई कि उसको irreducible minimum कहा जाता है अर्थात् मृत्यु-संख्या उससे अधिक नहीं घटाई जा सकती। इन आयोजनों का यहाँ पूर्ण वर्णन करना असंभव है। उसके लिये किसी बड़ी पुस्तक को देखना चाहिये।

हमारे देश में भी इसी प्रकार प्रयत्न करना चाहिये। अभी तक यहां कोई भी मातृ-शिक्षा संबन्धी उचित आयोजन नहीं है जिसके कारण शिशु का पालन उचित प्रकार से नहीं हो पाता। उसके शरीर की वृद्धि नहीं होती और न उसमें बल आता है। निर्बलता के कारण उसको रोग दबा लेते हैं और थोड़े समय में वह मृत्यु का ग्रास बन जाता है।

'बालमृत्यु' का अर्थ है शिशु की प्रथम बारह मास में मृत्यु। साधारणतया 'बालमृत्यु-संख्या' से प्रति सहस्र उत्पन्न हुये बच्चों

में से जिनकी प्रथम वर्ष में मृत्यु हो गई हो उनकी संख्या समझी जाती है। यदि किसी स्थान की बालमृत्यु १५४ है तो उससे समझना चाहिये कि उस स्थान में १००० बच्चे जो जन्मे थे उनमें से १५४ बच्चों की प्रथम बारह मास ही में मृत्यु हो गई।

संसार के अन्य सभ्य देशों की अपेक्षा हमारे देश में बालमृत्यु-संख्या सबसे अधिक है। निम्नलिखित तालिका देखिए—

देश	बालमृत्यु-संख्या (प्रतिसहस्र)
न्यूजीलैंड	७०
नार्वे	७०
आस्ट्रेलिया	७८
स्वीडेन	७८
आयरलैंड	९४
स्वीटजरलैंड	९४
डेनमार्क	१००
अमेरिका	१२४
फ्रांस	१२६
बेल्जियम	१५१
इटली	१५३
जापान	१५६
देहली	२३३
करांची	२४८
मद्रास	२८२
रंगून	३०३
कलकत्ता	३६८
बम्बई	५५६

यह अंक १५ या २० वर्ष पुराने हैं। संभव है कि इन वर्षों में इन अंकों में और भी कमी हो गई हो। किन्तु तो भी अपने देश के प्रमुख नगरों से अन्य देशों की तुलना करने पर मालूम होता है कि जहाँ इंगलैंड में एक बच्चा मरता है, वहाँ हमारे देश में चार बच्चे मरते हैं अथवा इससे भी अधिक। और जब इतने बच्चे मरते हैं तो अवश्य ही इससे अधिक संख्या ऐसे बच्चों की होगी जो रोगग्रस्त जीवन व्यतीत करते हैं। ऐसे बच्चे बड़े होकर संसार में कौन सा बड़ा कार्य कर सकते हैं।

बालमृत्यु के कारण—हमारे देश में भी बालमृत्यु के वही कारण हैं जो अन्य देशों में हैं। हमारे समाज में कितनी ही ऐसी कुप्रथाएँ हैं जिनका बालमृत्यु से घनिष्ठ सम्बन्ध है। निम्नलिखित विशेष कारण हैं, जो हमारे देश के नवजात शिशुओं को उनके जीवन के प्रथम वर्ष ही में मृत्यु का ग्रास बना देते हैं।

१. बालविवाह।
२. प्रसव की रीति तथा प्रसूति-गृह।
३. निर्धनता।
४. उचित तथा पर्याप्त भोजन की कमी।
५. उचित निवास स्थान की कमी।
६. वस्त्रों का अभाव।
७. माता की अनभिज्ञता।
८. पूर्व-प्रसवकाल की असावधानी।

१—बालविवाह—हमारे देश में बालविवाह की प्रथा अधिक प्रचलित है। पृष्ठ ६ पर दिए गये अंक, जो सैन्सस रिपोर्ट से लिये गये हैं भिन्न-भिन्न आयु पर विवाहित लड़के और लड़कियों की संख्या बताते हैं।

आयु	पुरुष (लड़के)	स्त्री (लड़की)
१ मास से ५ वर्ष	६	११
५ वर्ष से १० ,,	३२	८८
१० ,, से १५ ,,	११६	३८२
१५ ,, से २० ,,	२९८	७७१
२० ,, से २५ ,,	५६४	८७७
२५ ,, से ३० ,,	७५२	८६३

प्रति एक सहस्र कन्याओं में ११ ऐसी हैं जिनका विवाह १ मास से ५ वर्ष की अवस्था में हो चुका है। वास्तव में कहीं-कहीं पर जन्म के पूर्व ही विवाह हो जाता है। कम से कम वाग्दान हो जाता है। दो स्त्रियाँ आपस में समझौता कर लेती हैं कि यदि एक के पुत्र हुआ और दूसरी के पुत्री तो उन दोनों का विवाह हो जायगा।

५ से १० वर्ष की विवाहित कन्याओं की संख्या ८८ है और लड़कों की ३२ है। १० से १५ वर्ष वाली कन्याएँ एक सहस्र में ३८२ विवाहित हो चुकी हैं। १५-२० वर्ष वाली विवाहित कन्याओं की संख्या ७७१ है। इसी प्रकार इन अंकों से यह पता चलता है कि लड़कों की अपेक्षा लड़कियों का विवाह जल्दी किया जाता है। १५ से २० वर्ष की आयु में प्रति सहस्र ७७१ लड़कियों का विवाह हो चुका है। किन्तु केवल २९८ लड़कों का हुआ है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि आज देश में बढ़ी हुई बालमृत्यु-संख्या का यह एक बहुत बड़ा कारण है। इस प्रथा के कारण लड़के-लड़कियाँ अपरिपक्व अवस्था में ही विवाह के सूत्र में बाँध दिये जाते हैं जिससे सन्तान शीघ्र ही उत्पन्न होने लगती है। किन्तु ऐसी सन्तान सदा दुर्बल होती है और बहुत कम संख्या में जीवित देखी जाती है, इसका कारण यह है कि स्त्री-पुरुष के जिस वीर्य और रज

की शक्ति से भ्रूण की सृष्टि होती है, उसकी उनमें कमी रहती है। फिर सन्तान बलवती और चिरायु कहाँ से उत्पन्न हो ? बलवती और दीर्घायु सन्तान उत्पन्न करने के लिये पुरुष और स्त्री को पूर्ण वीर्य और रज सम्पन्न होना चाहिये। बालविवाह के द्वारा आबद्ध दम्पत्तियों में इसका अभाव रहता है। यही कारण है कि उनकी सन्तानें पहले तो जीवित नहीं रहतीं और यदि जीवित भी रहती हैं, तो बहुत ही निर्बल रूप में।

गर्भस्राव का महारोग भी बालविवाह में बहुत देखा जाता है। जो लड़कियाँ अपूर्ण और अपरिपक्व अवस्था में ही गर्भ को धारण करती हैं, प्रायः उन्हीं को यह रोग हुआ करता है। अपरिपक्व अवस्था के कारण उनका वस्तिगह्वर अपूर्ण और अविकसित रहता है। गर्भाशय की पेशियाँ भी निर्बल और शक्तिहीन-सी रहती हैं। निर्बल और शक्तिहीन गर्भाशय की पेशियाँ गर्भ के भार को न सँभाल सकने के कारण उसे बाहर फेंकने का प्रयास करती हैं। अधिकांश निर्बल स्त्रियों को इसी कारण तीन चार महीने के पश्चात् गर्भस्राव हो जाया करता है। यह ऐसा रोग है जो एक बार लगने के पश्चात् बार-बार हुआ करता है जिससे वे दुर्बल हो जाती हैं और दूसरे रोग उनको लग जाते हैं।

विवाह करते समय यह देखना चाहिये कि लड़का और लड़की दोनों पूर्ण अवस्था को प्राप्त हो चुके हों, उनके शारीरिक अंगों और शक्तियों का पूर्ण विकास हो चुका हो, और वे रोगों से मुक्त हों तथा अपने उत्तरदायित्व को पूर्ण रूप से समझते हों। सिफिलस (Syphilis) और उपदंश (Gonorrhoea) दो ऐसे रोग हैं जो दम्पति-जीवन का नाश कर देते हैं, एक स्वस्थ स्त्री को बन्ध्या बना देते हैं तथा पुरुष को सन्तानोत्पत्ति के अयोग्य कर देते हैं।

कितनी ही निर्दोष पतिपरायण स्त्रियाँ अपने पतियों के पाप के फलों को भोगती हैं और और मातृत्व के सुख से आजीवन वंचित रह जाती हैं। विवाह से पूर्व यह भी देखना उचित है कि किसी को यह रोग तो नहीं है।

उत्तम बलवान सन्तान थोड़ी आयु वाले निर्बल दम्पतियों के नहीं हो सकती। केवल उपयुक्त अवस्था और दृढ़ सुविकसित शरीर वाले माता पिता ही सबल दीर्घजीवी बच्चों को उत्पन्न कर सकते हैं। इसी कारण हमारे शास्त्रों में २५ वर्ष की आयु पुरुष के लिये और कम से कम १६ वर्ष की आयु स्त्री के लिये विवाह के लिये उचित आयु बताई गई। २५ वर्ष तक ब्रह्मचर्याश्रम का पालन करके जब पुरुष समान आयुवाली स्त्री के साथ गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते हैं तो ऐसे दम्पत्ति की सन्तान सबल दीर्घजीवी और गुण वाली होती है।

२—प्रसव की रीति तथा प्रसूति-गृह—हमारे देश में पुरानी प्रसव की रीति जो प्रचलित है उसकी जितनी भी निन्दा की जाय वह कम है। प्रसूता को प्रसव के लिये मकान का सबसे निकृष्ट कमरा, जिसमें वायु और प्रकाश के आने के लिये कोई मार्ग नहीं होता, दिया जाता है। यदि उसमें कोई रोशनदान होते हैं तो वे भी बन्द कर दिये जाते हैं। दरवाजे पर एक टाट का परदा लटका दिया जाता है। उसके पास एक अँगीठी जलती रहती है जिसमें धूप या गंधक पड़ती रहती है। इस प्रकार कमरे में शुद्ध वायु के आने का मार्ग पूर्णतया बन्द कर दिया जाता है। उसी कमरे में प्रसूता को ६ दिन तक रहना पड़ता है। वहीं पर वह मलमूत्र त्याग करती है। वहीं पर उसको भोजन दिया जाता है।

दाइयाँ, जो प्रसव की क्रिया करवाती हैं, नीच जाति की मूर्ख स्त्रियाँ होती हैं जिनके परिवार में यह काम होता आया है। उनको स्वच्छता का कोई विचार नहीं होता। यदि उन्होंने साधारण जल से हाथ धो लिये तो बहुत है। साबुन तथा निसंक्रामक द्रव्यों से हाथों को धोना तथा प्रसव के समय सब शुद्ध वस्तुओं का प्रयोग करना तो उनको ध्यान में भी नहीं आ सकता। शिशु के नाल को वह पत्थर, लोहे के टुकड़े तथा मिट्टी के बर्तनों के टुकड़ों से काटती हैं।

प्रसव के पश्चात् जब शिशु गर्भाशय से बाहर आ जाता है तो गर्भाशय का सारा भीतरी पृष्ठ तथा योनि मार्ग एक वृहद् घाव की भाँति हो जाते हैं। जिस श्लैष्मिक कला से उनके पृष्ठ ढँके रहते हैं जिसके कारण रोगों के जीवाणु भीतर प्रवेश नहीं कर सकते वह सब नष्ट हो जाती हैं। ऐसी दशा में यदि किसी भी रोग के जीवाणु वहाँ पहुँच जाते हैं तो भयंकर रोग उत्पन्न कर देते हैं। यही कारण है कि हमारे देश में इतनी अधिक स्त्रियाँ प्रसव के पश्चात् प्रसूति ज्वर (Peurperal Fever) से ग्रस्त होती हैं और मृत्यु का ग्रास बनती हैं।

प्रसव के समय स्वच्छता, शुद्ध वायु तथा प्रकाश की अत्यन्त आवश्यकता होती है। प्रसूता और नवजात शिशु दोनों का जीवन इन्हीं पर निर्भर करता है। प्रसव के लिए एक बड़ा स्वच्छ हवादार कमरा होना चाहिये जिसमें किसी प्रकार की गन्ध न आती हो। जो पाखाने और रसोई घर से दूर हो और जिसका फ़र्श पक्का हो तथा जहाँ से जल के निकास का भी उत्तम प्रबन्ध हो। कमरे में कुछ दिन पूर्व सफेदी करवा देना उत्तम है जिससे वह कमरा पूर्ण-तया शुद्ध हो जाय।

प्रसव के समय पर दाइयों और परिचारिकाओं को पूर्णतया शुद्ध और स्वच्छ होना चाहिये जैसे कि किसी बड़े आपरेशन के लिये होते हैं। प्रसव कराने वाली ऐसी दाइयाँ होनी चाहियें जो सुशिक्षित और अनुभवी हों। मूर्ख दाइयों से प्रसव करवाना प्रसूता की जान के साथ खेलना है। उत्तम तो यह है कि यह काम किसी अनुभवी लेडी डाक्टर के द्वारा हो और दाइयाँ उसकी देख-भाल में काम करें।

३—कंगाली—कंगाली सहस्र रोगों की जड़ है जिससे संसार भर के रोग लग जाते हैं। निर्धन व्यक्ति न भोजन का प्रबन्ध कर सकता है न वस्त्रों का। बीमार होने पर उसको डाक्टर को बुलाना और दवा का प्रबन्ध करना भी असंभव सा हो जाता है। बालकों की देख-रेख और सेवा के लिये नौकर या परिचारिकायें रखना उसकी शक्ति के बाहर होता है। जब उत्तम भोजन का प्रबन्ध नहीं हो सकता तो अन्य बातों का तो प्रश्न ही क्या है। जिनको हम मध्यम श्रेणी में गिनते हैं उनमें से ऐसे कितने हैं जो सब आवश्यक बातों का प्रबन्ध कर सकते हैं। फिर उन लोगों का क्या कहना है जो भर पेट भोजन प्राप्त करने में भी असमर्थ हैं। दुर्भाग्यवश हमारे देश में ऐसे व्यक्ति ही अधिक हैं।

जो लोग सम्पन्न हैं, वे माता और शिशु के लिये उत्तम भोजन भी प्राप्त कर सकते हैं। दूध, जो शिशु के लिये जीवन है; उसका भी वे प्रबन्ध कर सकते हैं। परिचारिकाओं को भी लगा सकते हैं, बच्चे के रोग-ग्रस्त होने पर डाक्टर को बुलाकर औषधि आदि का भी प्रबन्ध कर सकते हैं। उचित वस्त्रों की भी उनको कोई कमी नहीं रहती और न रहने का स्थान ही संकीर्ण होता है।

किन्तु निर्धन व्यक्तियों को ये सब आपदायें झेलनी पड़ती हैं। न भोजन का प्रबन्ध हो सकता है, न दवा का। माता और बच्चे दोनों की देख-रेख असंभव सी हो जाती है। रहने के लिये केवल एक या दो कमरे होते हैं। उन्हीं में गृहस्थी का सारा काम होता है। प्रसव भी उन्हीं में से एक कमरे में होता है। फिर स्वच्छता और शुद्धि वहाँ कितनी रह सकती है? ऐसी दशा में सब भाग्य ही पर छोड़ना होता है। यदि शिशु और माता दोनों बच गये तो भाग्य-वशात्। नहीं असामयिक अन्त तो है ही।

योरुप के कई देशों में परिवार की आय तथा परिवार की बाल-मृत्यु के कारणों का अन्वेषण किया गया है और पाया गया है कि दोनों में विशेष संबन्ध है। जर्मनी के एरफर्ट (Erfert) नगर में डाक्टर कल्क ने यह परिणाम निकाला है कि मजदूरों में १००० बच्चों में से प्रथम वर्ष में ५०५ की मृत्यु हुई। मध्यम श्रेणी में १७३ की और उच्च-श्रेणी के लोगों में केवल ८९ की मृत्यु हुई। इन अंकों के अनुसार उत्तम श्रेणी की अपेक्षा मजदूर के बच्चों की छः गुनी अधिक मृत्यु हुई। इंगलैंड के बरमिंघम में डाक्टर राबर्टसन के प्राप्त अंकों के अनुसार धनवान् श्रेणी वाले लोगों में १००० में से केवल ५० की मृत्यु हुई। किन्तु निर्धन व्यक्तियों में २०० बच्चे मरे अन्य देशों में भी यही पाया जाता है।

निर्धन तथा मजदूर श्रेणी में माता को पारिवारिक आय बढ़ाने के लिये परिश्रम तथा मजदूरी करनी पड़ती है। योरुप में अनेक स्त्रियाँ दफ्तरों में काम करती हैं। बहुत सी मिल और फैक्टरियों में काम करती हैं। अनुसंधान से जो अंक प्राप्त किये गये हैं उनसे यह पता चलता है कि जो स्त्रियाँ प्रसव से कम से कम एक मास पूर्व काम करना छोड़ देती हैं और विश्राम लेती हैं उनकी संतान सबल

होती हैं। किन्तु जो प्रसव के दिन तक काम करती हैं उनमें बालमृत्यु कहीं अधिक होती है।

इस प्रकार परिवार की आय और माता के परिश्रम के साथ बालमृत्यु का घनिष्ठ सम्बन्ध पाया गया है।

४—उचित और पर्याप्त भोजन की कमी—शिशु के लिये माता का दूध ही सबसे उत्तम भोजन है। उससे शिशु की सब आवश्यकतायें पूर्ण हो जाती हैं। स्वस्थ माताओं के स्तन में बच्चे के लिये पर्याप्त दूध होता है। यदि ६ व ७ मास तक बच्चे को माता का दूध मिलता रहे तो उसकी शारीरिक उन्नति पूर्ण हो जाती है और शरीर में रोग-निवारण की शक्ति भी पूर्णरूप से आ जाती है।

माता के दूध के पश्चात् दूसरा नम्बर गाय के दूध का है, किन्तु इसका उचित प्रयोग अर्थात् उचित प्रकार से रखना और पिलाना अत्यन्त कठिन है। इसी कारण ऊपरी दूध पीने वाले बच्चों को कई प्रकार के रोग हो जाते हैं और वह अकाल मृत्यु के ग्रास बनते हैं। हमारे देश में जितने बच्चे मरते हैं उनमें से आधे ऊपरी दूध के कारण रोगग्रस्त होकर शरीरांत कर देते हैं।

सेफोर्ड नगर में प्राप्त निम्नलिखित अंकों से माता तथा ऊपरी दूध का बालमृत्यु पर प्रभाव स्पष्ट है :—

	उत्पन्न हुये	मृत्यु हुई	बालमृत्यु-संख्या (प्रति १०००)
जिनको माता का दूध मिला	२८८०	३२८	११३.६
जिनको ऊपरी दूध मिला	२३५	७४	३१४.६

ऊपरी दूध पीने वालों में लगभग २$\frac{3}{4}$ मृत्यु अधिक हुई। माता का दूध पीने वाले बच्चे अधिक हृष्ट-पुष्ट होते हैं और इस कारण उनकी आयु भी अधिक होती है।

प्रसव के पूर्व गर्भिणी स्त्री के लिये भी जो भावी माता है, उपयुक्त और पर्याप्त भोजन उतना ही आवश्यक है जितना शिशु के लिये। माता का भोजन ऐसा होना चाहिये जो सहज ही में पच जाय, जिसमें भोजन के सब अवयव—प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, विटेमिन, लवण इत्यादि—उपयुक्त मात्रा में हों, और जल भी पर्याप्त रूप से सम्मिलित रहे। कैलशियम भी गर्भावस्था के लिये विशेष वस्तु है। इससे शिशु की अस्थियों का निर्माण होता है। विटेमिन ए और डी दोनों अत्यन्त आवश्यक वस्तुयें हैं जो गर्भकाल के भोजन का अंग होना चाहिये। ये सब वस्तुयें दूध में सम्मिलित हैं। इस कारण गर्भावस्था में दूध आहार का एक मुख्य अंग होना चाहिये। जो लोग अंडे का प्रयोग करते हैं उनके लिये यह भी उत्तम भोजन है। मांस, यद्यपि अत्यन्त पुष्टिकारक और लाभदायक है, किन्तु इसके अधिक प्रयोग से गर्भावस्था में कई भयंकर रोग उत्पन्न हो सकते हैं।

फलों के रस का भी अधिक प्रयोग करना चाहिये। साथ में कैलशियम के लिये कालजाना या ऐसी ही कोई अन्य वस्तु तथा विटेमिन ए और डो, जो बाजार में कई नाम से बिकते हैं, जैसे ऐबिडोल (Abidol), उनका भी प्रयोग पर्याप्त मात्रा में होना चाहिये।

५—उचित निवास-स्थान की कमी—निवास-स्थान के साथ भी बालमृत्यु-संख्या का गहरा सम्बन्ध पाया गया है। योरुप में जो अनुसंधान किया गया है उसके अनुसार जिन परिवारों के पास रहने के लिये केवल एक ही कमरा है उनमें बालमृत्यु लगभग २५० हैं अर्थात् उत्पन्न हुये १००० बच्चों में २५० बच्चे मर जाते हैं। जिनके पास दो कमरे हैं उनको बालमृत्यु १५० है। तोन कमरे वालों में

१२५ है और जिनके पास चार या इससे अधिक कमरे हैं उनमें बालमृत्यु १०० से भी कम है। इसका यह भी कारण हो सकता है कि चार या इससे अधिक कमरे वे ही लोग ले सकते हैं जो सम्पन्न हैं। अतएव उनको धनाभाव न होने के कारण सब प्रकार की सुविधायें उपलब्ध हैं।

निवास स्थान का स्वास्थ्य के साथ गहरा सम्बन्ध होता है। जो मकान गन्दे होते हैं, जहाँ सील रहती है और वायु और प्रकाश का पूर्ण प्रवेश नहीं होता, वहाँ सदा बीमारी बनी रहती है। रहने के मकान में स्वच्छ वायु के आने के मार्ग में किसी प्रकार की रुकावट न होनी चाहिये। प्रत्येक कमरे में सूर्य का प्रकाश पहुँचना चाहिये। अतएव मकान के चारों ओर कुछ खुला स्थान होना चाहिये। तथा भीतर पर्याप्त आँगन का होना भी अत्यन्त आवश्यक है।

रहने के लिए उपयुक्त स्थान का मिलना छोटे शहरों की अपेक्षा बड़े शहरों में अत्यन्त कठिन है। हमारे देश की अपेक्षा योरुप में तो और भी जटिल है। उत्तम स्थान मिलना मध्यम श्रेणी वालों के लिये भी असम्भव है, निम्नश्रेणी वालों का तो कहना ही क्या है।

शुद्ध वायु और प्रकाश का प्रभाव बच्चों पर भोजन ही के समान होता है। यदि उनको प्रकाशहीन स्थानों में रखा जाय तथा शुद्ध वायु न मिले तो वह शीघ्र ही रोग-ग्रस्त हो जायेंगे। उनकी वृद्धि रुक जायगी, और थोड़े ही समय में उनका रंग पीला पड़ जायगा। ऐसे स्थानों में रहने वाले बालक सदा कृश और अस्वस्थ दिखाई देते हैं। उनमें रोग-निवारण की शक्ति बहुत कम होती है और इस कारण शीघ्र ही रोग-ग्रस्त होकर मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

६—उचित वस्त्रों की कमी—बच्चों के शरीर में सहन-शक्ति बहुत कम होती है। इस कारण वह ठंड और ताप को अधिक

सहन नहीं कर सकते। ठंड का विशेषकर उन पर बुरा प्रभाव पड़ता है। उनको निमोनिया आदि रोग बहुत सहज में हो जाते हैं। निमोनिया बच्चों के लिये बहुत भयंकर होता है और उचित चिकित्सा न करने से उनका प्राणान्त ही कर देता है।

वस्त्रों का बच्चों को शरीर की वृद्धि पर भी बहुत प्रभाव पड़ता है। उनके लिये उपयुक्त वस्त्रों का आगे चलकर वर्णन किया जायगा।

७—माता की अनभिज्ञता—बालमृत्यु का बहुत बड़ा कारण माता की अनभिज्ञता होती है। पहिले तो छोटी ही अवस्था में विवाह हो जाता है जब तक लड़के-लड़की अपने उत्तरदायित्व और भले बुरे को समझने के योग्य भी नहीं हो पाते। फिर गर्भ धारण के विषय में किसी प्रकार की शिक्षा भी नहीं दी जाती। यहाँ तक कि हमारे समाज में तो माता-पिता बच्चों के सामने इस विषय में बात करना भी निन्दनीय समझते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि जब वे लड़कियाँ गर्भ धारण करती हैं तो न उनको यह मालूम होता है कि अपने स्वास्थ्य के लिये उनको क्या करना चाहिये, न शिशु के बारे में ही उनको कुछ ज्ञान होता है।

बच्चे का जीवन माता ही की सावधानी और दक्षता पर निर्भर करता है। नवजात शिशु के समान संसार में कोई निस्सहाय प्राणी नहीं होता। चिड़ियों के बच्चे भी मानव शिशु की अपेक्षा अधिक समर्थ होते हैं। इस कारण शिशु पूर्णतया माता ही पर निर्भर करता है। भोजन, वस्त्र, स्वच्छता इत्यादि सब बातों के लिये वह माता ही पर आश्रित रहता है। वह अपने को व्यक्त भी नहीं कर सकता। न अपने दुःख-दर्द को किसी भाँति प्रगट ही कर सकता है। वह केवल रो सकता है और उसके रोने ही से माता को उसकी आवश्यकतायें

समझनी पड़ती है। उसकी क्षुधा रोने ही से प्रगट होती है और पेट का दर्द भी रोने ही से समझा जाता है। अतएव यह माता के कौशल पर निर्भर करता है कि वह शिशु की आवश्यकताओं को समझ ले और समझ कर उनकी बुद्धिमानी के साथ पूर्ति करे।

माता का शिक्षित और अशिक्षित होना बच्चों को देखने से मालूम हो जाता है। शिक्षित माता के बच्चे स्वच्छ-सुथरे, साफ कपड़े पहिने, स्वस्थ, प्रसन्न चित और कलहरहित दीखते हैं। किन्तु अशिक्षित माता के बालक गन्दे, प्रायः कृश बदन, कलहप्रिय और बदतमीज होते हैं। इसमें बालकों का कोई दोष नहीं है। किन्तु उनकी देख-रेख करने वालों का है। बच्चों की सबसे बड़ी रक्षक और शिक्षक माता ही होती है। यदि माता शिक्षिता है तो बच्चे भी शिक्षित अर्थात् सुन्दर आचरण वाले और स्वस्थ होंगे, नहीं तो इसके विपरीत होंगे।

इस विषय पर अमेरिका में बहुत अनुसंधान हुआ है। उससे यही परिणाम निकला है कि बच्चे के जीवन पर दूसरी किसी भी बात का इतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना कि माता के शिक्षित और बुद्धिमती होने का। संसार में जितने बड़े लोग हुये हैं उनमें से अधिकांश के उदय और महत्ता का कारण मातायें बनी हैं। नेपोलियन सदा कहा करता था कि उसके इतने उच्चपद पर पहुँचने का कारण उसकी माता थी जिसकी सुशिक्षा ने उसकी उन्नति के मार्ग को प्रशस्त बना दिया था।

अतएव यह आवश्यक है कि विवाह के पहिले लड़कियों को शिशु-पालन की पूर्ण शिक्षा दी जाय। योरुप, अमेरिका, जापान आदि देशों में इनकी पूर्ण व्यवस्था की गई है। बच्चों के लिये वहाँ

विशेष अस्पताल बनाये गये हैं और उन्हीं के साथ माताओं तथा भावी माताओं को शिक्षा देने का प्रबन्ध है। वहाँ पर विशेषज्ञ और अनुभवी डाक्टरों द्वारा लेक्चर दिये जाते हैं तथा क्रियात्मक रूप से सब करके दिखाया जाता है। बच्चे के पालन-पोषण, भोजन, वस्त्र, मलत्याग, स्नान, उनको आदतों को बनाना, साधारण रोगों को पहिचानना और उनकी चिकित्सा करना इत्यादि सब बातों का पूर्णतया ज्ञान कराया जाता है।

इसके अतिरिक्त वहाँ Child-Welfare Centres भी इन अस्पतालों के साथ रहते हैं जहाँ Health Visitors की नियुक्ति होती है। ये बड़ी अनुभवी, कार्यकुशल और दक्ष स्त्रियाँ होती हैं जो एक बाल-रोग विशेषज्ञ डाक्टर के नीचे काम करती हैं। उनका काम होता है घर जाकर गर्भिणी स्त्रियों को बाल-पोषण की शिक्षा देना। प्रसव से पूर्व वह यह बताती रहती हैं कि गर्भिणी को किस प्रकार रहना चाहिये, क्या भोजन करना चाहिये। प्रसव के पश्चात् एक वर्ष तक वे बच्चे की देख-रेख करती हैं। यदि बच्चे को कोई रोग हो जाता है तो वे उसकी चिकित्सा का प्रबन्ध करती हैं। माता की भी देख-रेख करती हैं और सब प्रकार की सहायता देती हैं।

जब से यह योजना काम में लाई गई है तब से उन देशों में बालमृत्यु बहुत कम हो गई है।

८—**पूर्व प्रसव काल की असावधानी**—प्रसव से पहिले के तीन मास, विशेषकर अन्तिम मास, गर्भिणी के लिये अत्यन्त महत्व के होते हैं। भोजन, आचार-विचार और रहन-सहन का गर्भिणी के स्वास्थ्य पर बहुत प्रभाव पड़ता है। इनमें किसी प्रकार की त्रुटि से कई प्रकार के रोग हो जाते हैं जिनसे अनेकों स्त्रियों की मृत्यु

होती है। गर्भकाल में कई ऐसे विशेष रोग होते हैं जो साधारण अवस्था में नहीं होते। ये रोग अन्तिम तीन मास में अधिक होते हैं और अत्यन्त भयंकर होते हैं। यदि प्रारम्भ ही में बड़ी सतर्कता से उपयुक्त चिकित्सा नहीं होती तो मृत्यु अवश्य ही हो जाती है। इस कारण भोजन, मलत्याग, वस्त्र, व्यायाम दिनचर्या इत्यादि के सम्बंध में अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता है। तनिक सा भी विकार उत्पन्न होते ही डाक्टर की सलाह लेना आवश्यक है। सिर-दर्द, आँखों के आगे तारे टूटना, चक्कर आना, जी मचलाना, तथा नेत्रों के रंग में पीलापन आ जाना यह सब ऐसे लक्षण हैं जिनको संदेह की दृष्टि से देखना चाहिये। गर्भकाल के रोगों के यही प्रथम लक्षण हैं और उनका तनिक भी संदेह होते ही उचित प्रबन्ध करना चाहिये। रोग के पूर्णतया प्रगट होने पर कुछ भी करते नहीं बनेगा। इस कारण उनको रोकना ही उचित है।

अगले अध्याय में इस विषय का सविस्तार वर्णन किया गया है।

दूसरा अध्याय

पूर्व-प्रसव-काल

(Ante-Natal Period)

प्रसव-काल स्त्रियों के जीवन के लिये अत्यन्त संकट का समय होता है। स्त्रियाँ जब इस संकट से मुक्त हो जाती हैं तब उनका

नवीन जीवन समझना चाहिये। कितनी स्त्रियाँ प्रसव के समय गर्भ-बाधाओं और पीड़ाओं से मृत्यु की भेंट हो जाती हैं।

प्रसव करना स्त्री के लिये एक प्राकृतिक नियम है। प्रकृति के नियमानुसार काम करने से प्रसव के समय पीड़ा नहीं होती और न विघ्न-बाधाओं का ही सामना करना पड़ता है। किन्तु जो स्त्रियाँ प्राकृतिक नियमों की उपेक्षा करती हैं और उनके विरुद्ध आचरण करती हैं उनको अनेक प्रकार के कष्ट होते हैं, रोग हो जाते हैं और कभी-कभी मृत्यु की ग्रास बन जाती हैं। इस सम्बन्ध में गर्भिणी के संबन्धियों का भी कुछ कम कर्त्तव्य नहीं है। उनको चाहिये कि जो कुछ उसके लिये उपयुक्त हो, जिससे उसका स्वास्थ्य उन्नत रहे, भारी आशंकायें उत्पन्न न होने पावें तथा शिशु के भी लिये जो भविष्य में लाभदायक हो, गर्भिणी से वैसे ही आचरण करावें।

पूर्व-प्रसव-काल, अर्थात् प्रसव होने से पूर्व का समय, यों तो पूरे नौ मास का होता है, किन्तु इस शब्द विशेष कर प्रसव से पूर्व के तीन या चार मास समझे जाते हैं। यही काल स्त्री के लिये विशेष महत्व का होता है जिसमें विशेष सावधानी की आवश्यकता है। इस समय में निम्नलिखित बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिये :—

भोजन—माता और भावी शिशु दोनों का स्वास्थ्य अथवा यों कहना चाहिये कि शिशु का जीवन ही एक प्रकार से माता के भोजन पर निर्भर करता है। माता के भोजन की त्रुटि का शिशु पर तुरन्त और बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। जन्म होने से पूर्व शिशु का शरीर माता के भोजन ही से बनता है। जन्म के पश्चात् भी ७ या ८ मास तक माता के शरीर ही से शिशु को भोजन प्राप्त होता है। अतएव माता के भोजन का विशेष आयोजन अत्यन्त आवश्यक है।

माता का भोजन ऐसा होना चाहिये जो शीघ्र ही पचने वाला हो। उसमें भोजन के सब अवयव प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट, विटेमिन, लवण आदि उपयुक्त मात्रा में सम्मिलित होने चाहिये। साथ में तरल पदार्थ अधिक मात्रा में रहें। यद्यपि यह सब अवयव अनेक पदार्थों में उपस्थित मिलते हैं, किन्तु वह सब ऐसे रूप में होने चाहिये कि उनका पाचन तथा शोषण सहज में हो जाय। इस दृष्टि से दूध बहुत ही उपयुक्त वस्तु है। इसमें जो भी प्रोटीन, वसा इत्यादि उपस्थित होते हैं उनका पूर्ण पाचन तथा शोपण होता है। किन्तु दूध में जल की मात्रा इतनी अधिक होती है कि केवल दूध से शरीर की आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिये दस बारह सेर या इससे भी अधिक प्रति दिन दूध पीना पड़ेगा। इतने दूध से पतले दस्त तथा अन्य पाचक विकारों के होने का डर है। और केवल एक ही पदार्थ से भोजन के सब अवयवों की पर्याप्त मात्रा में प्राप्ति भी स्वास्थ्य-नियमों के प्रतिकूल है। अतएव दैनिक भोजन में अन्य पदार्थों के साथ कम से कम १ सेर दूध अवश्य रहना चाहिये। चौबीस घंटे में एक सेर दूध अधिक नहीं है। दो या तीन या चार बार में एक या डेढ़ सेर दूध पीना अत्यन्त सहज है।

दूध की 'केसीन' नामक प्रोटीन सहज में पूर्णतया पचती है और बहुत थोड़े समय में शरीर का अंग बन जाती है। दूध की शर्करा (lactose) का भी पूर्ण शोषण होता है। यह इतनी शीघ्र पचने वाली वस्तु है कि बच्चों को इसमें औषधि मिलाकर दे देते हैं। दूध की वसा का भी यही हाल है।

दूध में विटेमिन-ए और डी दोनों रहते हैं। बच्चे के शरीर की वृद्धि के लिये दोनों की आवश्यकता है। अतएव दूध द्वारा इसकी भी पूर्त्ति हो जाती है। बच्चे की अस्थियों की वृद्धि के लिये

भी कैलशियम बड़ी ही आवश्यक वस्तु है। दूध में यह भी उपस्थित रहती है। इस प्रकार दूध बच्चे की सब आवश्यकताओं की, जन्म के पूर्व माता के द्वारा और जन्म के पश्चात् स्वतः, पूर्ति करता है।

गर्भावस्था में साधारण भोजन वही रहना चाहिये जिसका सदा से अभ्यास हो। अकस्मात् भोजन बदल देने से असुविधा होगी और संभव है वह रुचिकर न हो। यदि परिवर्तन की आवश्यकता हो तो धीरे-धीरे किया जाय। थोड़ी-थोड़ी नवीन वस्तुयें भोजन में सम्मिलित कर दी जायँ।

गर्भिणी के भोजन में हरे शाक की पर्याप्त मात्रा रहनी चाहिये। पालक, बथुआ, चौलाई, मूली, कुलफा आदि की भुजी अत्युत्तम वस्तु हैं। जितने भी हरे पत्ते वाले शाक हैं वे सब लाभदायक हैं। टमाटर, परवल, भिंडी, लौकी, निनुवाँ आदि इस दृष्टि से बहुत उत्तम हैं। हरे शाकों से एक और लाभ होता है। वे कब्ज नहीं रहने देते। मल त्याग शुद्ध होने में बहुत सहायता देते हैं। इस कारण उनका प्रयोग आवश्यक है। गर्भकाल में कब्ज न रहने देना चाहिये। कब्ज से कई प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

भोजन में फलों का होना भी बहुत आवश्यक है। फलों के रस में लवण और विटेमिन दोनों होते हैं जो स्वास्थ्य के लिये अनिवार्य्य हैं। इनसे रक्त की क्षारीयता बनी रहती है जो जीवन के लिये आवश्यक है।

फलों में सन्तरा, नारंगी, अनार, मौसम्बी आदि मुख्य हैं। किन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि केवल अधिक दाम वाले फल ही लाभदायक होते हैं। सन्तरा, अनार आदि के अधिक दाम होते हैं और सब लोग इतना व्यय नहीं कर सकते। किन्तु जो गुण इन फलों से होता है वही कम दाम वाले फलों से भी होता है। टमाटर,

गन्ने का रस, आम, जामुन, खरबूजा आदि सब लाभदायक हैं। जो भी फल मौसम पर मिलते हों, उन सब का प्रयोग करना चाहिये। सब लाभदायक होते हैं। नींबू का प्रयोग भोजन के साथ करने से बहुत लाभ होता है। कच्ची गाजर बहुत लाभदायक वस्तु है। अतएव जिस समय में जो फल मिल सकें उन सब का प्रयोग करना उचित है।

तरल पदार्थों के सम्बन्ध में पहिले ही लिखा जा चुका है। गर्भावस्था में इनका अधिक प्रयोग करना चाहिये। जल भी पर्याप्त मात्रा में पीना चाहिये। इससे शरीर के विष मूत्र और स्वेद द्वारा शरीर से बाहर निकलते रहते हैं।

सारांश में गर्भिणी के भोजन में दूध का विशेष स्थान होना चाहिये तथा हरे फल और शाक भी उसके लिये अत्यन्त आवश्यक हैं।

वस्त्र—वस्त्र सदा ऐसे होने चाहिये जो शरीर की शीत से रक्षा करें और गर्मी में शरीर को ठंढा रखें। इस अवस्था में ठंढ से बचने की बहुत आवश्यकता होती है। साथ में गर्मी के मौसम में धूप और लू से बचना भी आवश्यक है।

वस्त्र सदा ढीले पहनने चाहिये। जो वस्त्र शरीर पर कसे रहते हैं उनसे हानि होती है। विशेष कर ऊपर के वस्त्र अवश्य ही ढीले हों। कसकर वस्त्र बाँधने से गर्भाशय की वृद्धि में रुकावट पड़ती है और इससे बच्चे के शरीर के विकृत हो जाने का भय रहता है।

पहनने के लिए सूती, रेशमी या ऊनी सभी तरह के वस्त्र उत्तम हैं। जिसका सदा अभ्यास हो उसी को पहना जाय। किन्तु ऊपर लिखित बात ध्यान में रक्खी जायें।

शौच—गर्भावस्था में मलत्याग का शुद्ध होना अत्यन्त आवश्यक है। कब्ज रहना अनेकों रोगों की जड़ है और गर्भावस्था में विशेष कर भयानक है। इस कारण कब्ज को सदा दूर करना चाहिये। प्रथम तो भोजन ही ऐसा होना चाहिये जिससे कब्ज न रहने पाये। ऊपर की पंक्तियों में यह बताया जा चुका है। हरे शाक, फल, दूध ये सब कब्ज दूर करने वाले हैं। मुनक्का अंजीर. किशमिश, छुहारे हल्के विरेचक हैं। ये मलत्याग शुद्ध होने में सहायता देते हैं। दूध में बीस या पच्चीस मुनक्का और दस बारह छुहारे औटा कर उसको पीने से मलत्याग शुद्ध होता है और शरीर में शक्ति आती है। क़ब्ज को दूर करने के लिये गुलकन्द भी उत्तम वस्तु है। रात्रि को सोते समय २ से ४ तोले तक गुलकन्द खा कर ऊपर से दूध पी लेने से प्रातःकाल शौच साफ होता है। यदि इससे भी दस्त साफ न हो तो रात्रि को सोते समय ३ से ६ माशे तक इस्पगोल (जिसको साधारणतया ईसफगोल कहा जाता है) की भूसी फाँक-कर ऊपर से गरम दूध पीना चाहिये। इसका प्रयोग बहुत दिनों तक किया जा सकता है। अंग्रेजी दवायें Agarol, Petro-lagar, Milk of Magnesia आदि उत्तम वस्तु हैं।

स्नान—साधारण-अभ्यास के अनुसार दिन में एक बार स्नान अवश्य करना चाहिये। शरीर पर तेल की मालिश आवश्यक है जिससे चर्म के छिद्र खुले रहें और स्वेद द्वारा शरीर के विष बाहर निकलते रहें।

जाड़े के मौसम में गरम जल से और गरम मौसम में ठंढे जल से स्नान करना उचित है। किन्तु जैसी आदत हो वैसा ही करना चाहिये।

व्यायाम—कुछ न कुछ व्यायाम करना आवश्यक है। गर्भावस्था के लिये सब से उत्तम व्यायाम टहलना है। दो तीन मील तक नित्य प्रति ऐसे स्थान में टहलना चाहिये जो समतल हो। बहुत ऊचा-नीचा गढ़े वाला न हो, जिससे ऊँचे-नीचे पाँव पड़ने का डर न रहे। टहलने में इतना परिश्रम होना चाहिये कि थोड़ा पसीना आ जाय। आठवें या नवें मास में पहुँच कर इतना टहलना कठिन हो जायगा तो भी थोड़ा बहुत अवश्य टहलना चाहिये। यदि मकान में अहाता हो तो वहीं टहलना चाहिये। जिनको किसी और प्रकार के व्यायाम करने की आदत हो वे उसको जारी रखें।

चक्की चलाना, दही विलोना भी स्त्रियों के लिये उत्तम व्यायाम है। किन्तु आजकल की सभ्यता इनको नीचे कर्मों में समझने लगी है। यह धारणा शीघ्र ही दूर करनी पड़ेगी। अब वह समय, जब सब पश्चिमी वस्तुयें, रीति, खेल, या व्यवहार तथा ढंग सुन्दर और आकर्षक जान पड़ते थे, बदलता जा रहा है। और शीघ्र ही अपने देश तथा स्वभावानुकूल वस्तुओं तथा रीति रिवाजों को अपनाना होगा। ये व्यायाम बहुत लाभदायक हैं और विशेषकर स्त्रियों के लिये, जिनको घर के काम-काज से कम ही समय मिलता है, बहुत उपयुक्त हैं।

प्रयोजन व्यायाम से है किसी भी प्रकार का व्यायाम हो वह करना चाहिये। व्यायाम से सब शारीरिक क्रियायें उत्तम रूप से होती हैं। रक्त का संचालन वेग से होता है और विषों का त्याग शरीर से पूर्ण होता है। इससे स्वास्थ्य उत्तम रहता है। इसके अतिरिक्त उदर की पेशियाँ, जो प्रसव क्रिया में विशेष काम करती हैं, बलवान और सक्रिय बनी रहती हैं। गर्भाशय की पेशियाँ भी दृढ़ रहती हैं।

इस कारण प्रसव के समय वे उत्तम प्रकार से संकोच करती हैं। अतएव प्रसव में विशेष कष्ट नहीं होता और शारीरिक दशा के उत्तम होने से पीछे कोई उपद्रव भी नहीं होते।

यह बड़े-बड़े प्रसूति के अस्पतालों तथा उन डाक्टरों का, जो यही काम करते हैं प्रति दिन का अनुभव है कि जो स्त्रियाँ व्यायाम करती रहती हैं उनको प्रसव में बहुत कम कष्ट होता है। प्रायः सुना जाता है कि अमुक स्त्री के खेत में काम करते-करते बच्चा हो गया। इसका कारण यही है कि स्त्रियाँ बराबर कुछ न कुछ परिश्रम करती रहती हैं। गर्भावस्था में यदि बहुत अधिक काम करना बुरा है तो कुछ भी परिश्रम न करना उससे भी हानिकारक है।

निद्रा—गर्भिणी को ८ या ९ घंटे की पूरी नींद सोना चाहिये। हाँ, रात्रि को जागना और दिन में सोना उचित नहीं है। पूरी नींद रात्रि ही में आती है और उसी समय सोना चाहिये। दिन में भोजन के पश्चात् कुछ समय विश्राम करना भी लाभदायक है। एक या दो घंटे सो रहने से कोई हानि नहीं है। वरन् लाभ ही है। किन्तु दिन में अधिक सोने से रात्रि को नींद नहीं आयेगी। स्वास्थ्य की दृष्टि से यह उत्तम नहीं है। रात्रि को न सोने से भोजन का पाचन ठीक नहीं होता। इससे कब्ज रहने लगता है और अन्य उपद्रवों के उत्पन्न होने का डर रहता है। उचित समय पर सोना और उचित समय पर उठना स्वास्थ्य की कुंजी है।

यदि ठीक प्रकार से नींद न आवे तो डाक्टर की सलाह लेनी चाहिये।

मानसिक अवस्था—गर्भिणी को उचित है कि सदा प्रसन्नचित्त रहे। कभी अपने मन को उदास न होने दे और न बुरे विचार

ही मन में आने दे। मानसिक दशा का गर्भावस्था में बच्चे पर बहुत प्रभाव पड़ता है। जन्म के पश्चात् बच्चे के बड़े होने पर उसके आचार-विचार वैसे ही होते हैं, जैसी कि गर्भावस्था में माता की मानसिक दशा थी। इस प्रकार बच्चे को सज्जन तथा सुशील अथवा कलहप्रिय वा धूर्त बनाना माता ही पर निर्भर करता है। सदा प्रसन्न रहने तथा उत्तम भावों को मन में धारण करने से बालक सुन्दर, हृष्ट-पुष्ट तथा उत्तम आचरणों वाला होता है जो माता-पिता के लिये गर्व का कारण होता है तथा वंश को उन्नत करने वाला होता है। इस कारण गर्भिणी को सदा उच्च विचार रखने चाहिये और कलह, द्वेष, ईर्ष्या आदि से दूर रहना चाहिये।

साथ में परिवार वालों को भी इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि घर में कोई ऐसी बात न होने पावे जिससे गर्भिणी के चित्त को दुःख पहुँचे। सबों को उसको सदा प्रसन्न रखने का प्रयत्न करना चाहिये। उसके साथ धार्मिक तथा उच्च मनोरंजक वार्तालाप करना चाहिये। उसके कमरे में धार्मिक तथा महान् व्यक्तियों की तस्वीरें होनी चाहिये। पढ़ने के लिये भी ऐसे ही ग्रन्थ हों जो मनोरंजन के साथ उत्तम भावों को जागृत करने वाले हों। सुन्दर फूलों के बीच बाग में सैर करना, सुगंधित फूलों की माला तथा सुन्दर वस्त्र धारण करना, प्रिय सम्वाद करना आदि सब ऐसी बातें हैं जो गर्भ में स्थित भ्रूण की वृद्धि करने वाली तथा भविष्य में बच्चे के शारीरिक तथा मानसिक विकास में अत्यन्त सहायता देने वाली हैं। मानसिक चिन्तायें गर्भ के लिये घातक हैं। कभी-कभी इनके कारण गर्भस्राव तक हो जाता है।

व्यवहार—गर्भिणी को सदा सबसे सत्य और प्रेम का व्यवहार करना चाहिये। ऐसे व्यवहार से चारों ओर सुख उत्पन्न होता है और पारस्परिक प्रेम बढ़ता है, इससे सब प्रसन्न रहते हैं। ऐसी

दशा में गर्भ की अत्युत्तम वृद्धि होती है। यह पहिले ही कहा जा चुका है कि माता की मानसिक अवस्था और गर्भ में स्थित भ्रूण के विकास का घनिष्ठ सम्बन्ध है।

गर्भिणी को निम्नलिखित बातें वर्जित हैं :—

१—पति सहवास।

२—अत्यन्त परिश्रम।

३—मानसिक उद्विग्नता—चिन्ता, भय, शोक आदि।

४—कूदना या दौड़ना।

५—मल या मूत्र के वेग को रोकना।

६—पारिवारिक कलह।

मूत्र की परीक्षा—गर्भिणी के मूत्र की परीक्षा समय-समय पर करना अत्यन्त आवश्यक है। विशेष कर छठें या सातवें मास से तो यह परीक्षा अवश्य ही होनी चाहिये। सिर-दर्द आँखों के सामने तारे से टूटना, कभी-कभी दिखाई न देना, अथवा दृष्टि का अकस्मात कम हो जाना इत्यादि लक्षण के प्रगट होते ही मूत्र की परीक्षा तुरन्त होनी चाहिये। यह परीक्षा किसी विशेषज्ञ डाक्टर द्वारा की जाय। यदि मूत्र में एक विशेष पदार्थ, जिसको 'अलब्यूमिन' कहते हैं, मिले तो वह गर्भकाल के रोगों का एक सूचक है। ऐसी दशा में पूर्व से उन रोगों के रोकने का यदि उचित प्रबन्ध किया जाय, तो यह रोग रुक सकते हैं। यह रोग प्रायः घातक ही होते हैं। दस में से दो रोगी भी कठिनाई से बचते हैं। किन्तु रोग उत्पन्न होने के पूर्व मालूम हो जाने से रोग को रोका जा सकता है। इस कारण सातवें मास से प्रति पन्द्रवें दिन और नवें मास में प्रति सप्ताह किसी अनुभवी डाक्टर द्वारा मूत्र की परीक्षा करवानी चाहिये, और यदि

मूत्र में अलव्यूमिन मिले तो उसके लिये स्त्री रोग-विशेषज्ञ डाक्टर या डाक्टरनी की सलाह से उचित प्रवन्ध होना चाहिये।

डाक्टरी परीक्षा—प्रसव के समय से दो मास पूर्व यह निश्चित कर लेना चाहिये कि प्रसव कहाँ और किसके द्वारा होगा और जिसको प्रसव कर्म करना होगा उसके द्वारा गर्भिणी की पूर्ण परीक्षा होनी चाहिये क्योंकि डाक्टर या डाक्टरनी को गर्भिणी के सब अंगों हृदय, फुस्फुस आदि की परीक्षा करनी होती है, विशेषकर गर्भ में स्थित भ्रूण की और वस्तिगह्वर (Pelvic Cavity) की। वस्तिगह्वर के कई प्रकार के नाप लिये जाते हैं जिनसे यह पता चल जाता है कि अस्थियों में कोई ऐसी विकृति तो नहीं है जिसके कारण जन्म के समय भ्रूण जिस मार्ग से गर्भाशय से बाहर आता है उसमें कोई अवरोध उत्पन्न हो जाय। कुछ स्त्रियों में ये अस्थियाँ विकृत होती हैं जिनके कारण मार्ग संकीर्ण हो जाता है। भ्रूण उसके द्वारा बाहर नहीं आ सकता। ऐसी दशा में अस्त्र लगा कर बच्चे को बाहर निकालना पड़ता है। यदि मार्ग अधिक संकीर्ण हुआ तो आपरेशन करके प्रसव कराना होता है अथवा बच्चे को नष्ट करके माता की जान बचानी पड़ती है। गर्भ की स्थिति टेढ़ी होने पर भी इसी प्रकार की कुछ आयोजना करनी पड़ती है।

पहिले से परीक्षा करने पर डाक्टर को यह सब बातें मालूम हो जाती हैं। यदि पहले से उसका कुछ प्रवन्ध हो सकता है तो डाक्टर वैसा करता है, नहीं तो प्रसव के समय आवश्यक क्रियाओं को करने के लिये सब उपकरणों सहित तैयार रहता है। इन विकृत दशाओं में अस्पताल ही में प्रसव कराना उचित है। वहाँ सब तरह का प्रबंध होता है।

परीक्षा से हृदय, फुस्फुस तथा अन्य अंगों के रोगों का पता भी चल जाता है। यदि कहीं पर रोग हुआ तो उसका भी समुचित प्रबन्ध करना आवश्यक है।

इन कारणों से गर्भिणी को पूर्ण डाक्टरी परीक्षा अत्यन्त आवश्यक है।

तीसरा अध्याय

प्रसव

स्त्री के लिये प्रसव का समय अत्यन्त महत्व का होता है। इस समय में गर्भ में स्थित भ्रूण गर्भाशय को छोड़कर बाहर आता है और गर्भाशय जो गर्भ-काल के अन्त तक अपने स्वाभाविक परिमाण से १८०० गुना बढ़ चुकता है अकस्मात् खाली हो जाता है जिससे माता के शरीर में भी अकस्मात् परिवर्तन होता है। इस समय में जो भी क्रियायें होती हैं यदि उनमें तनिक भी गड़बड़ी हो जाती है तो स्त्री के जीवन पर आ बनती है। इन सब क्रियाओं और परिवर्तनों का प्रभाव न केवल उसी समय समाप्त हो जाता है किन्तु सवा या डेढ़ महीने तक बना रहता है।

जो प्रसव की रीति हमारे देश में प्रचलित है उसके सम्बन्ध में पहले ही बताया जा चुका है। जितनी उसकी निन्दा की जाय कम है। उसी के कारण लाखों स्त्रियाँ आज भी अपने जीवन से हाथ धोती हैं। इस कारण प्रसव का उत्तम प्रबन्ध होना आवश्यक है। यह प्रसंग इस पुस्तक के विषय का अंग न होने से इसका यहाँ बहुत ही संक्षेप से वर्णन किया जायगा।

प्रसव का स्थान अथवा प्रसूति-गृह—प्रसव के लिये आजकल सभी बड़े नगरों में विशेष अस्पताल बन गये हैं जहाँ पर सुशिक्षिति डाक्टरनी और दाइयों की नियुक्ति होती है। वे प्रसव में दक्ष होती हैं। वहाँ सब उपकरण भी उपस्थित रहते हैं। परिचारिकायें भी बच्चों की देख-रेख तथा प्रसूता स्त्री की सेवा में शिक्षित होती हैं। यहाँ प्रसव में यदि कोई कठिनाई भी आ जाती है तो उचित साधनों द्वारा उनको तुरन्त दूर करने की व्यवस्था हो जाती है। प्रसव के पश्चात् भी यदि बच्चे या माता को कोई रोग हो जाते हैं तो उनकी चिकित्सा भी सहज में हो जाती है। अतएव ये अस्पताल जो कहीं-कहीं प्रसूतिगृह (Maternity Homes) या बालपोषक केन्द्र (Child-welfare Centres) कहलाते हैं, प्रसव के लिये अत्यन्त उपयुक्त स्थान हैं।

जो इन अस्पतालों में प्रसव नहीं करवाना चाहते उनको अपने मकानों ही में प्रबन्ध करना पड़ता है। प्रसव के लिए मकान का एक अत्युत्तम कमरा चुनना चाहिये, जिसमें वायु और प्रकाश के भीतर आने का पूरा प्रबन्ध हो; अर्थात् बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ और रोशनदान हों। किन्तु कमरे के पास मोरी, शौच-स्थान या रसोई न होनी चाहिए जिससे किसी प्रकार की गन्ध प्रसव स्थान में न जा सके। साथ ही कमरा एकान्त भी अवश्य हो, जिससे उसमें शोर न पहुँचे और माता को पूर्ण विश्राम मिल सके।

कमरे का फर्श पक्का होना चाहिये। वहाँ गरम और ठंढे जल दोनों का प्रबन्ध होना चाहिये। जल के निकास का भी पूर्ण प्रबन्ध रहे।

कमरे में केवल वही सामान रहना चाहिये, जो प्रसव के लिये आवश्यक हो। दूसरी सब वस्तुओं को वहाँ से हटा देना चाहिये।

कमरे को पहिले ही से स्वच्छ करवा कर उसमें सफेदी करवा देना चाहिये।

दाई—जो लोग खर्च कर सकते हैं उनको दो मास पूर्व किसी अनुभवी डाक्टरनी को प्रसव के लिये नियुक्त कर लेना चाहिये। वही मूत्र की तथा शारीरिक परीक्षा करती रहे और समय आने पर प्रसव कराये। जो लोग डाक्टरनी का खर्चा नहीं उठा सकते वे दाई को नियुक्त कर सकते हैं। किन्तु दाई शिक्षित होनी चाहिये, जिसने इस कर्म की पूरी शिक्षा पाई हो और अस्पताल में अनुभव प्राप्त किया हो। वह स्वच्छ और रोग-रहित हो और माता तथा बच्चे दोनों की सेवा प्रेम-सहित करे। आधुनिक उपाय और साधनों का उसको पूर्ण ज्ञान हो। जिन दाइयों को बड़े-बड़े अस्प-तालों में शिक्षा दी जाती है, उनको भीतरी अंगों की रचना, भ्रूण की स्थिति तथा प्रसव के समय भ्रूण की स्थितियों में भिन्नता इत्यादि सब बातों का ज्ञान कराया जाता है। क्योंकि प्रसव का कर्म इस ज्ञान के बिना सफलता-पूर्वक पूर्ण नहीं किया जा सकता अतएव केवल ऐसी दाइयों को नियुक्त करना चाहिये जिनको प्रसव तथा प्रसूता और बच्चे की परिचर्या का पूरा ज्ञान हो और साधारण सज्जनता के गुणों से भी युक्त हों।

प्रसव के समय बहुत सी वस्तुओं तथा उपकरणों की आवश्यकता होती है। इनमें से कुछ तो डाक्टरनी स्वयं अपने साथ रखती है। शेष का प्रबन्ध परिवार वालों को करना होता है। ऐसी वस्तुओं की सूची डाक्टरनी या दाई से पहिले ही ले लेनी चाहिये और उन सब वस्तुओं को एकत्र करके एक सुरक्षित स्थान में रख देना चाहिये जिससे आवश्यकता के समय पर उनको निकाल कर उपयोग किया जा सके।

शय्या—प्रसव-कर्म के लिये एक कड़ा पलंग या तख्त या २ फुट चौड़ी और ६ फुट लम्बी मेज होनी चाहिये। उस पर एक गद्दा चादर से ढका हुआ हो। इस पर प्रसूता की पीठ के नीचे ३ फुट लम्बा और २ फुट चौड़ा एक मोमजामा या बरसाती का टुकड़ा लगा हो। यह बरसाती का टुकड़ा भी एक स्वच्छ शुद्ध छोटी चादर होती है जो ३ फुट लम्बी और ४ फुट चौड़ी, मेज के आरपार लगी रहती है। यह Draw Sheet कहलाती है। इससे चादर और बिस्तर नहीं बिगड़ने पाते।

मेज या तखत केवल प्रसव के लिये होना चाहिये। प्रसव के पश्चात् माता के सोने के लिये दूसरी शय्या होनी उचित है। यह शय्या एक साधारण पलंग पर होनी चाहिये जिस पर चादर से ढका हुआ गद्दा हो और उस पर Draw Sheet से ढकी हुई बरसाती रहे। प्रसव के पश्चात् माता को इस शय्या पर सुला देना चाहिये। बच्चे के सोने के लिये छोटा पालना होना चाहिये। उस पर मुलायम वस्त्र बरसाती से ढका बिछौना तथा ओढ़ने के भी मुलायम वस्त्र होने चाहिये। बच्चों के लिये ऐसे विशेष ओढ़ने के कम्बल आते हैं जो हलके किन्तु गरम होते हैं। ऐसे वस्त्रों द्वारा शिशु की ठंढ से रक्षा करना आवश्यक है। अस्पतालों में इस प्रकार के पलंग होते हैं कि पालना उन्हीं में लगा होता है।

मूत्र तथा मल त्याग—प्रसव के पूर्व मल और मूत्र का पूर्ण त्याग करवा देना चाहिये। यदि मूत्राशय (Bladder) और मलाशय दोनों भरे रहते हैं तो प्रसव में बहुत कठिनाई पड़ जाती है क्योंकि गर्भाशय, मलाशय और मूत्राशय के बीच में स्थित है। इसलिए प्रसव के प्रारम्भ होते ही रबड़ के कैथीटर द्वारा मूत्राशय से

मूत्र को निकाल कर उसे खाली कर देना चाहिये। इसी प्रकार मलाशय को खाली करने के लिये एनीमा दे देना चाहिये।

प्रसव वास्तव में डाक्टर या दाई का कर्म है और वे प्रसव की क्रियाओं तथा उसकी कठिनाइयों से भली भाँति परिचित हैं। अतएव उनके द्वारा वे सब कठिनाइयाँ सहज में दूर की जा सकती हैं तथा प्रसव को पूर्ण कराया जा सकता है। अतएव डाक्टर या दाई का इस कर्म में दक्ष होना अत्यन्त आवश्यक है। इस कारण पहिले ही से किसी चतुर व्यक्ति को इस काम के लिये चुन लेना चाहिये।

चौथा अध्याय

शिशु

स्नान—जब बच्चा जन्म लेता है तो उसका शरीर एक तेल या चर्बी के समान श्वेत वस्तु से ढका रहता है जो शरीर के चर्म पर एकत्र रहता है। स्पर्श करने से वह वस्तु जमे हुये घी के समान प्रतीत होती है। इसको Vernix Caseosa कहते हैं। इस वस्तु को चर्म पर से हटा देना आवश्यक है। स्नान कराने का यही विशेष प्रयोजन होता है। किन्तु इसको पूर्णतया हटाने के लिये सफेद वैसलीन अथवा अन्य तैलीय वस्तुओं की आवश्यकता होती है। अतएव शिशु के शरीर पर तेल लगा कर उसको नहला दिया जाता है जिसकी विधि आगे लिखी हुई है।

प्रसव के पश्चात्, ज्यों ही वायुमंडल की ठंढी वायु शिशु के शरीर चर्म को स्पर्श करती है त्यों ही बच्चा रोने लगता है, जिससे बच्चे के फुफ्फुस फैलते हैं, उनमें वायु प्रवेश करती है और उसकी छाती चौड़ी होती है। बच्चे के जीवन का प्रथम लक्षण रोना है।

अतएव जब बच्चा रोना प्रारंभ कर देता है तब उसको स्नान कराने का आयोजन किया जाता है। स्नान कराने से पूर्व सारे शरीर पर सफेद वैसलीन मल दी जाती है। गर्दन, बगल, जंघा मल स्थान के चारों ओर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। क्योंकि यहाँ पर सफेद वस्तु अधिक जमी रहती है।

इस प्रकार सारे चर्म पर वैसलीन मल कर उसको नरम वस्त्र या तौलिया से पोंछ देना चाहिये। इससे वह श्वेत वस्तु भी बहुत कुछ दूर हो जायगी। तदनन्तर स्नान आरम्भ करने से पूर्व नेत्रों की ओर ध्यान देना आवश्यक है।

नेत्रों को प्रथम बोरिक एसिड के लोशन से धो देना अत्यन्त आवश्यक है। १० ग्रेन बोरिक एसिड को १ औंस गरम जल में मिला कर बोरिक लोशन बन जाता है। इस बोरिक लोशन में शुद्ध शोषक (Absorbent Cotton) रुई को जो पानी को, सोख लेती है, भिगोकर उससे दोनों नेत्रों को भली भाँति धो देना चाहिये। और धोने के पश्चात् सिलवर नाइट्रेट लोशन (Silver Nitrate Solution—एक प्रतिशत शक्ति वाला) को दो-दो बूँदें दोनों नेत्रों में डाल देनी चाहिये। यह क्रिया अत्यन्त आवश्यक है और इससे सहस्रों बच्चे जन्मांध होने से बच जाते हैं। इसके पश्चात् स्नान का आयोजन करना चाहिये।

प्रथम स्नान—जिस जल से स्नान कराया जाय उसकी उष्णता १००° फारेनहाइट होनी चाहिये। शिशु ठंढ को नहीं सहन कर सकते। इस कारण उनके स्नान के लिये सदा गरम जल का प्रयोग करना चहिये। बच्चों को नहलाने के लिये छोटे-छोटे टीन या जस्ते के बने हुये टब (Tub) आते हैं। ये इस प्रयोजन के लिये बहुत उपयुक्त होते हैं। भिन्न-भिन्न आयु वालों के उपयुक्त

आकार के छोटे बड़े टब बाजार में बिकते हैं। नवजात शिशु को स्नान कराने के लिये तामचीनी के तसले भी, जिनको बेसिन (Basin) कहते हैं, काम में लाये जा सकते हैं। टब में दस दिन के पश्चात् स्नान कराना चाहिये, जब नाल सूख कर गिर जाये।

स्नान करते समय सबसे पहिले नेत्र, मुख, सिर तथा कानों को स्वच्छ करना चाहिये। तत्पश्चात् शरीर के शेष भाग को धोना चाहिये।

स्नान किस प्रकार कराना चाहिये—प्रसव के पश्चात् शिशु को शुद्ध की हुई तौलियों में लपेट दिया जाता है। उनके ऊपर एक कम्बल का टुकड़ा लिपटा रहता है। तत्पश्चात् एक चौड़ी मेज पर या फर्श ही पर, जहाँ पर स्नान कराने का पहले ही से पूरा प्रबन्ध कर लिया जाता है। बच्चा जिन वस्त्रों में लिपटा रहता है उनको खोल दिया जाता है। बच्चा उन्हीं पर लेटा रहता है। इसके पश्चात् बच्चे के शरीर पर शुद्ध श्वेत वैसलीन मली जाती है। सारे शरीर पर वैसलीन मलने के पश्चात् एक नरम वस्त्र—गौज व साधारण नरम मलमल—से सारा शरीर पोंछ दिया जाता है। इसके पश्चात् नेत्र, मुख, नाक और कानों को स्वच्छ किया जाता है और तब शेष शरीर को स्नान कराया जाता है।

नेत्र—नेत्रों को स्वच्छ करने के लिये बोरिक लोशन और कास्टिक सौल्यूशन (Silver Nitrate Solution 1%) की आवश्यकता होती है। इन वस्तुओं को पहले ही तैयार रखना चाहिये। थोड़ी शुद्ध अंग्रेजी रुई भी चाहिये। बच्चे को पीठ के बल लिटा कर दाहिने हाथ की तर्जनी और अँगूठे के बीच में

थोड़ी ऊपर बताई हुई रुई लेकर उसको बोरिक लोशन में भिगो लेना चाहिये। बायें हाथ की हथेली को बच्चे के माथे पर रख कर अँगूठे और तर्जनी से नेत्र के दोनों पलकों को खोल कर बोरिक लोशन में भीगी हुई रुई से नेत्र को धो देना चाहिये। रुई को नेत्र के भीतरी कोने पर लगा कर उसको दबा देना पर्याप्त है। रुई में भरा हुआ बोरिक लोशन रुई से निकल कर नेत्र में होता हुआ दूसरी ओर से बह जायगा। तब इस निचोड़ी हुई रुई से नेत्र के चारों ओर का स्थान तथा माथा स्वच्छ कर देना चाहिये।

इसके पश्चात् कास्टिक लोशन की दो बूँद नेत्र में डाल देनी चाहिये। इसी प्रकार दूसरे को भी स्वच्छ करना चाहिये

मुख—नेत्र के पश्चात् मुख की बारी आती है। थोड़ी रुई तर्जनी उँगली पर लपेट कर बोरिक लोशन में भिगो कर बच्चे के मुँह के भीतर डाल कर चारों ओर को फेरी जाती है और उसके जिह्वा, तालू, गले के पीछे का भाग सब स्वच्छ कर दिये जाते हैं। तत्पश्चात् बोरिक एसिड मिली हुई ग्लिसरिन या शहद और सुहागा उँगली से मुँह में चारों ओर लगा दिया जाता है।

नाक—नाक के भीतर अँगुली नहीं जा सकती। इसलिये एक पतली बाँस की तीली पर रुई लपेट कर उसको बोरिक लोशन में भिगोकर उससे नाक भीतर से स्वच्छ कर देनी चाहिये। नथुनों के भीतर यदि कुछ वस्तु एकत्र हो तो उसको निकाल देना चाहिये।

कान—कानों के भीतर भी स्थान बहुत थोड़ा होता है। इस कारण उनको भी भीतर से नाक की भाँति स्वच्छ करके दो बूँद गरम तेल डाल देना उचित है।

शरीर—तदनन्तर शरीर के शेष भाग की स्वच्छता होनी चाहिये। शिशु को नहलाने के लिए दो वेसिन रखने चाहिये। एक खाली हो और दूसरे में १००° फारेनहाइट का उष्ण जल भरा हो। नेत्र, मुख, कान, नाक स्वच्छ करने के पश्चात् बच्चे को खाली बेसिन में इस प्रकार लिटा देना चाहिये कि उसके सिर और गर्दन बेसिन से बाहर बायें हाथ पर रहें। दाहिने हाथ से एक नरम वस्त्र द्वारा बच्चे के शरीर पर साबुन मलना चाहिये। फिर दूसरे वेसिन में भरे हुये गरम जल से धो देना चाहिये। इस प्रकार बच्चे की गर्दन, बगल, जंघा, टाँगें और धड़ सब स्वच्छ करने चाहिये। जब सारा शरीर साबुन और गरम जल से स्वच्छ हो जावे तो बच्चे को वेसिन से निकाल कर नरम तौलिये से उसका शरीर भली-भाँति पोंछ दे और शरीर पर पाउडर लगा कर नरम शुद्ध तौलिया में लपेट कर उसके ऊपर से एक छोटा नरम कम्बल ओढ़ा दे। इस समय बच्चा सो जायगा।

साबुन—साबुन बहुत नरम होना चाहिये। नरम से अर्थ है जिसमें अधिक क्षार न हो। साधारणतया ग्लिसरिन के जितने साबुन आते हैं वे नरम होते हैं। तेज साबुन से बच्चे का चर्म चटक जाता है।

पाउडर—पाउडर भी अधिक न लगाना चाहिये। उससे भी चर्म चटकता है। हलका सा पाउडर पर्याप्त है।

स्नान कराते समय यह ध्यान रहे कि नाल, जिस पर शुद्ध गौज और रुई बँधी हुई है, जल में न भीगने पावे।

प्रथम स्नान के पश्चात्—शिशु को नित्य प्रति स्नान करवाना चाहिये, चाहे जाड़ा हो या गरमी। दिन में ग्यारह या बारह बजे

के लगभग कमरे को बन्द करके गरम जल से बच्चे को स्नान करवाना उचित है। प्रथम दस दिन तक जब तक नाल सूख कर नहीं गिर जाता तब तक टब में स्नान न करवाना चाहिये। इन दिनों में तामचीनी के बेसिन ही में, जिनमें बच्चे को पहिले बार स्नान कराया था, नहलाना चाहिये।

स्नान का आयोजन उसी प्रकार करना चाहिये जैसा कि प्रथम स्नान में किया गया था। किन्तु वैसलीन मलने की आवश्यकता नहीं है।

बच्चे के शरीर पर प्रथम तेल की हलकी मालिश की जाय। तत्पश्चात् एक नरम वस्त्र के टुकड़े को जल में भिगोकर उस पर साबुन रगड़ कर उससे बच्चे के सारे शरीर पर साबुन लगा देना चाहिये। इससे शरीर स्वच्छ हो जाता है। तत्पश्चात् एक नरम तौलिया या स्पंज (Sponge) को जल में भिगो कर उससे सारा शरीर साफ कर देना चाहिये। स्पंज इसके लिये बहुत उत्तम होता है। यह बहुत नरम होता है और इसमें जल भर जाता है। अतएव इससे धोते समय इसमें से जल निकलता रहता है जिससे साबुन धुल जाता है।

इसके पश्चात् शुद्ध गरम जल से स्नान कराया जाता है। बच्चे को बेसिन में रखने के लिये उसका सिर तथा शरीर बायें हाथ पर रखो और दाहिने हाथ से उसके पाँवों को पकड़ कर उसको गरम जल से भरे हुए बेसिन में रखो, इस प्रकार बच्चे का सिर और गर्दन जल से ऊपर निकला रहता है। इससे बच्चे के शरीर के सब भागों को धोया जाता है। शरीर पर का सारा साबुन छूट जाता है और शरीर स्वच्छ हो जाता है। जंघा, बगल, गर्दन, सिर आदि पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। कुछ लोग जल को दूसरे

बेसिन में रखते हैं और उसमें से जल ले लेकर शरीर को धोते जाते हैं। बच्चे को जल में दो या तीन मिनट से अधिक नहीं रखना चाहिये।

इस प्रकार स्नान कराने के पश्चात् बच्चे को जल से निकाल कर सूखे हुये नरम तौलिये से पोंछना चाहिये जिससे शरीर के किसी भाग पर जल न रहने पावे। तत्पश्चात् कुछ देर तक शरीर के चर्म को हथेली से मलना चाहिये। इससे चर्म में रक्त का संचार बढ़ जाता है और बच्चे स्वस्थ रहते हैं।

इसके पश्चात् शरीर पर हलका सा पाउडर लगा कर बच्चे को सूखे हुए वस्त्र पहिना दे।

टब में स्नान—दस दिन के पश्चात् जब नाल सूख कर गिर जाय तब बच्चे को टब में स्नान कराना चाहिये। स्नान कराने की विधि यही है जो ऊपर बताई जा चुकी है। बच्चे का सिर और उसकी गर्दन जल से ऊपर रहते हैं, जैसे कि बेसिन में स्नान कराते समय किया गया था।

जल की उष्णता—नवजात तथा तीन चार मास तक के शिशु के स्नान के लिये जल की उष्णता १००° फैरनहीट होनी चाहिये। आयु के बढ़ने पर जल की उष्णता भी घटाई जाती है। पाँच मास के पश्चात् ८५° से ९०° फैरनहीट के जल का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार धीरे-धीरे जल की उष्णता कम की जाती है। ५ वर्ष की आयु में बच्चे को ५०° फैरनहीट के ठंडे जल से नहलाया जा सकता है।

गरमी के दिनों में बच्चे के लिये गुनगुना जल पर्याप्त है।

कितनी बार प्रतिदिन स्नान करना चाहिये—दिन में एक बार स्नान कराना पर्याप्त है। अधिक आयु होने पर गरमी के दिनों में दो बार स्नान कराया जा सकता है।

मालिश—जैतून के तेल (Olive Oil) की मालिश बच्चे के शरीर पर स्नान के पूर्व नित्य होनी चाहिये। इससे बच्चा पुष्ट होता है और उसकी वृद्धि होती है।

पाँचवाँ अध्याय

निद्रा तथा सोने का कमरा

जन्म के पश्चात् स्नान करा देने पर बच्चा सो जाता है। स्वस्थ नवजात शिशु २४ घंटे में २२ घंटे सोता है। वह केवल भूख लगने पर जागता है जिसका प्रदर्शन केवल रोना है। शिशु के केवल तीन ही काम हैं—भोजन करना अर्थात् दूध पीना, मलमूत्र त्याग करना और रोना। ये ही तीनों कर्म उसके स्वस्थ रहने के लक्षण हैं। यदि ये उत्तम प्रकार से होते रहें तो समझना चाहिये कि बच्चे का स्वास्थ्य ठीक है। उसके इन कर्मों में किसी प्रकार की गड़बड़ी पड़ जाय तो समझना चाहिये कि बच्चे को कोई कष्ट है। बच्चा रोता केवल भूख से है अथवा जब उसको किसी प्रकार का कष्ट होता है—जैसे मूत्र से बिछौना भीग जाने पर। साधारणतया वह सोता ही रहता है।

कितने समय सोना उचित है—ज्यों-ज्यों शिशु की आयु बढ़ती जाती है त्यों-त्यों उसका निद्रा-काल कम होता जाता है। पहले मास में बच्चा बाईस घंटे सोता है। दूसरे और तीसरे मास में १८ से २० घंटे; छठे मास में पहुँचकर वह केवल १६ घंटे

सोने लगता है। प्रथम वर्ष के अन्त तक सोने का यही समय रहता है। दूसरे-तीसरे वर्षों में कुछ कम हो जाता है। पाँच वर्ष के वालक को १२ घंटे सोना चाहिये। १० वर्ष की आयु तक के लिए १२ घंटे तक सोना उपयुक्त निद्रा का समय है। १५ वर्ष के वालक को १० घंटे की निद्रा उपयुक्त है। १५ से २४ वर्ष तक की आयु वालों के लिये ८ से १० घंटे सोना उचित है। ८ घंटे की निद्रा युवकों के लिये आवश्यक है। वृद्धावस्था में पहुँचकर निद्रा-काल कम हो जाता है।

निद्रा सव ही अवस्थाओं में स्वास्थ्य का चिह्न है। जिस अवस्था में शरीर में जितनी अधिक वृद्धि होती है उतनी ही उस अवस्था में नींद अधिक आती है। इसी कारण वच्चा इतना अधिक सोता है। निद्रा का न आना रोग का लक्षण है। यदि वच्चे को पूरी नींद न आती हो तो उसे डाक्टर को दिखाना चाहिये। मस्तिष्क विकार का पहला लक्षण निद्रा न आना है। ऐसी दशा में उचित ओषधि का आयोजन करना चाहिये। इसी प्रकार वहुत अधिक सोना भी रोग का चिह्न है। यदि एक वर्ष का वालक २० घंटे सोवे तो उसको भी रोगी समझ कर उसकी उचित ओषधि करनी चाहिये।

वच्चे के सोने का स्थान—वच्चे को सुलाने का कमरा माता के सोने के कमरे से पृथक होना चाहिये। प्रसव के पश्चात् कम से कम एक सप्ताह के लिये भी ऐसा प्रवन्ध किया जा सके तो वहुत उत्तम है जिससे माता को पूर्ण विश्राम मिल सके और उसकी निद्रा में कोई वाधा न पड़े। इसके लिये माता और वच्चे की देख-रेख करने के लिये दो परिचारिकाओं की अवश्य आवश्यकता होगी जो सब लोगों के सामर्थ्य से वाहर है।

जहाँ ऐसा प्रबन्ध संभव न हो वहाँ माता के पलँग के पास ही बच्चे की शय्या भी बिछा देनी चाहिये। किन्तु माता के पलंग ही पर बच्चे को कदापि न सुलाया जाय। ऐसा करने से कई दुर्घटनायें हो चुकी हैं। माता के नीचे बच्चा दब गया है। यदि ऐसा न भी हो तो भी बच्चे के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है, माता को भी गाढ़ी निद्रा नहीं आती जिसकी इस समय उसको बड़ी आवश्यकता होती है।

सोने का कमरा—माता और बच्चे दोनों के सोने के कमरे अथवा कमरा (यदि एक ही हो) मकान के ऊपरी खंड में हों, जहाँ मकान का शोर न पहुँच सके। वह एकान्त होना चाहिये जिससे माता के विश्राम में बाधा न पड़े। कमरा ऐसा होना चाहिये कि उसमें वायु और धूप के प्रवेश के लिये काफी खिड़की और रोशनदान हों, तथा शौच-स्थान या मोरी कमरे के पास न हो, जिससे किसी प्रकार की दुर्गन्धि कमरे में न पहुँच सके। कमरे का फर्श पक्का हो, उसमें तनिक भी सील न हो तथा जल के निकास के लिये भी उचित प्रबन्ध हो।

प्रसव होने से पूर्व ही कमरे को ठीक कर लेना चाहिये। कमरे से सब अनावश्यक वस्तुओं को हटा दिया जाय। केवल वे ही वस्तुयें रहें जो माता और बच्चे के काम की हों। दरवाजों के परदे, कुर्सी, मेज इत्यादि सब हटा दी जायँ। और कमरे में सफेदी करवा दी जाय।

कमरे का वायुमंडल—कमरे में सदा शुद्ध वायु का संचार होता रहे। इसलिये कमरे में वायु के आने-जाने के लिये खिड़कियाँ और रोशनदान पर्याप्त होने चाहिये। जाड़े के दिनों में, विशेषकर रात्रि के समय, खिड़कियों को बन्द करना पड़ेगा। उस समय

रोशनदान खुले रहने चाहिये जिससे भीतर की गरम वायु ऊपर उठ कर रोशनदानों से निकल जाय। यदि भीतर की वायु बाहर निकलती रहेगी तो बाहर की शुद्ध वायु अवश्य ही कमरे के भीतर प्रविष्ट होती रहेगी। कमरे को एक ऐसी खिड़की खोल कर भी रखी जा सकती है, जिससे आने वाली वायु सीधी शरीर पर न लगे।

बच्चा अधिक शीत नहीं सहन कर सकता और न ताप के अकस्मात् और शीघ्र-शीघ्र होने वाले परिवर्तनों को ही सहन कर सकता है। जाड़े के अधिक होने पर उसको ठंढ लग कर निमोनिया रोग हो जाने का डर रहता है। ठंढ और तुरन्त ही गरमी लगने से, जैसा कभी-कभी वर्षा ऋतु में होता है, बच्चा बीमार हो सकता है। शिशु में सहन शक्ति तनिक भी नहीं होती।

कमरे के वायु-मंडल का ताप—जहाँ तक हो सके कमरे के वायु-मंडल का ताप दिन और रात में एक समान रखना चाहिये। दिन में कमरे का ताप ७०° फारेनहाइट के लगभग रहे और रात्रि को ६५° फारेनहाइट से कम न हो। ७०° फारेनहाइट से अधिक होना भी बुरा है और ६५° फारेनहाइट से कम होने से भी बच्चा रोगग्रस्त हो सकता है। प्रथम दो या तीन मास तक ताप इसी प्रकार रहना चाहिये। उसके पश्चात् ५ या ७ डिगरी कम होने से भी हानि नहीं है। एक वर्ष के पश्चात् ४५° फारेनहाइट से भी कुछ हानि न होगी।

ताप को उचित परिमाण पर रखने का प्रश्न जाड़ों ही में उत्पन्न होता है। गरमियों में तो यों ही ६५ या ७०° से ताप नीचे नहीं हो पाता। वरन् इस मौसम में तो दिन में ताप को घटाने की आवश्यकता है। बच्चे अधिक ताप को भी सहन नहीं कर सकते। उनको जुकाम हो जाता है जो बढ़ कर निमोनिया हो सकता है।

हरे पीले दस्त आने लगते हैं, पेट में दर्द हो जाता है और पेचिश के से लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

प्रकाश—सब से उत्तम प्रकाश बिजली के लैम्प का है। इस से किसी प्रकार की दूषित गैस, कार्बन-डाई-आक्साइड आदि उत्पन्न नहीं होती जिससे वायु-मंडल शुद्ध रहता है। मोमबत्ती सबसे अधिक कमरे को गन्दा करती है, क्योंकि इससे सबसे अधिक कार्बन-डाई-आक्साइड उत्पन्न होती है। तेल का दिया भी बहुत कार्बन-डाई-आक्साइड उत्पन्न करता है। गैस के लैम्प से यह गैस कम उत्पन्न होती है। यदि बिजली के अतिरिक्त और किसी प्रकार का प्रकाश प्रयुक्त किया जाय तो खिड़कियाँ खोल कर रखना आवश्यक है।

प्रकाश बहुत तीव्र न होना चाहिये। बच्चे को अँधेरे में भी सोने की आदत डालना आवश्यक है। इसलिये बच्चे के सो जाने पर लैम्प बुझा दिया जाय। प्रकाश यों भी बच्चे के सोने में बाधक होता है और कभी-कभी बच्चा चौंक उठता है।

अधिक अवस्था होने पर—नींद प्रत्येक अवस्था में स्वास्थ्य-वर्धक है और उत्तम स्वास्थ्य का लक्षण है। किस अवस्था में कितने समय की नींद आवश्यक है, यह पहिले बताया जा चुका है। इसमें व्यक्तिगत भिन्नतायें अवश्य ही बहुत पाई जाती हैं। कहा जाता है कि नेपोलियन केवल दो घंटे सोता था। किन्तु ये असाधारण घटनायें हैं। साधारणतया युवावस्था वालों के लिये ८ घंटे की नींद उपयुक्त है। कुछ लोग छः घंटे की नींद पर्याप्त समझते हैं। कुछ लोग केवल चार ही घंटे सोते हैं। निद्रा चाहे छः घंटे की हो वा ८ घंटे की वह गाढ़ी और पूर्ण होनी चाहिये। पहिले दो घंटे में

निद्रा सबसे गाढ़ी होती है। उसके पश्चात् हलकी होने लगती है। अन्तिम दो घंटों में सबसे हलकी हो जाती है। गाढ़ी निद्रा स्वप्न से रहित होती है। प्रारम्भ से अन्त तक निद्राकाल निरन्तर होता है। बीच-बीच में नींद टूटती नहीं है। निद्रा के पश्चात् आँख खुल जाती है और उठने वाले को ऐसा प्रतीत होता है मानों अभी सोये थे। उसके पश्चात् तनिक भी आलस्य नहीं रहता। प्रातः निद्रा समाप्त होने पर भी जो लोग नेत्र बन्द किये पड़े रहते हैं, वह उनकी आदत पड़ जाती है और आलस्य के वशीभूत हो कर वह ऐसा करते हैं। यह केवल आदत की बात है। प्रारम्भ ही से ऐसी आदत डालनी चाहिये कि आँख खुलते ही तुरन्त उठ बैठे।

थोड़ी आयु वाले बालकों को दोपहर को भी थोड़े समय सुलाना चाहिये। एक घंटे का समय पर्याप्त है।

सोने में स्वास्थ्य के साधारण नियमों का ध्यान रखना आवश्यक है। कमरे की खिड़कियाँ और रोशनदान खोलकर सोना चाहिये। जाड़ों में खिड़कियों के बन्द करने पर भी वायु के भीतर आने का पूरा प्रबन्ध रहे। मुँह बन्द कर के बालकों को कभी न सोने देना चाहिये। नाक सदा खुली रहे और सोते समय नाक ही से साँस लें। जो बालक मुख खोल कर सोते हैं उनकी नाक के पिछले भाग में (Adenoid) नामक ग्रन्थि हो जाती है जिसके कारण नाक से साँस भीतर नहीं आ सकती। इससे बच्चे के स्वास्थ्य को भयानक हानि पहुँचती है। इसकी तुरन्त खोज करके चिकित्सा करवानी चाहिये।

गाढ़ी नींद न आने के कारण—स्वस्थ बच्चे तथा बालकों को सदा गाढ़ी नींद आती है, उनको नींद से उठाना बहुत कठिन होता है। इसलिए गाढ़ी निद्रा बच्चे के स्वस्थ रहने का चिह्न है।

उसको भली प्रकार से नींद न आये तो बच्चे को कोई कष्ट है जिसको तुरन्त दूर करना आवश्यक है।

१—बच्चों के सोते-सोते चौंकने या रो उठने का सबसे साधारण कारण भोजन की त्रुटि होती है। भोजन के न पचने से नींद ठीक नहीं आती। इस कारण भोजन की त्रुटि को तुरन्त दूर करना चाहिये। यदि दूध गाढ़ा है तो उसको पतला करना चाहिये। दूध के कारण यदि उदर शूल (Colic) होता हो तो उसके लिए उचित प्रबन्ध करना आवश्यक है।

२—भोजन कम मिलने अर्थात् बच्चे के भूखे रहने से भी नींद ठीक नहीं आती।

३—जो बच्चे शीशी से दूध पीते हैं वे जब उचित मात्रा से अधिक दूध पी लेते हैं तब भी नींद नहीं आती।

४—रात्रि में कई बार भोजन देने से भी नींद में बाधा पड़ती है। इस कारण रात्रि को एक या दो बार से अधिक भोजन न देना चाहिये।

५—बच्चे के रोगग्रस्त हो जाने पर नींद उत्तम प्रकार से नहीं आती। खाँसी, बुखार, पेट का दर्द, छाती में दर्द आदि साधारण रोग हैं जो प्रायः बालकों को हो जाते हैं। सूखे का रोग (Marasmus) हो जाने पर नींद नहीं आती है।

६—बिस्तरे में मूत्र त्याग कर देने से ठंड लगने पर भी नींद नहीं आती। शरीर खुजलाने या पाँव खुले रह जाने से ठंढ मालूम होने पर भी यही दशा होती है।

७—जिन बच्चों को सोने के पूर्व गोदी में लेकर टहलने की आदत डाल दी जाती है उनको भी उत्तम प्रकार से नींद नहीं आती।

८—सोने के पूर्व लड़ाई या भयानक कहानियाँ सुनाने का भी बहुधा यह परिणाम होता है।

उचित प्रकार से नींद न आने पर इसका कारण मालूम करना चाहिये तथा यदि आवश्यक हो तो डाक्टर को दिखाना चाहिये और उसके ही अनुसार उसकी ओषधि होनी चाहिये।

बच्चे की शय्या—बच्चे की शय्या न बहुत नरम होनी चाहिये और न बहुत कड़ी। लोहे के तारवाला पलँग जिसके चारों ओर कठहरा होता है उत्तम होता है। नहीं तो छोटा साधारण पलंग जिससे चारों ओर कठहरा हो प्रयोग किया जा सकता है। उस पर रूई से भरा एक गद्दा और उस पर एक चादर हो। उस पर एक रबड़ या मोमजामे का टुकड़ा रहता है जो draw sheet से ढका रहता है। इनसे मलमूत्र त्याग होने पर गद्दा नहीं भीजने पाता। इनको बदलना भी सहज है।

बच्चे के ओढ़ने के वस्त्र बहुत भारी न हों किन्तु गर्म काफी हों जिससे बच्चे को ठंड न लगने पावे। वह मुलायम भी हों। बच्चे का कोमल शरीर कड़ी वस्तुओं को सहन नहीं कर सकता। बच्चों के लिये विशेष प्रकार के बने हुये छोटे-छोटे कम्बल आते हैं जो अत्यन्त मुलायम और हल्के होते हैं। इनके नीचे और ऊपर उन्हीं के बराबर की या उनसे कुछ बड़ी सफेद चादर लगा दी जाती है। यदि ठंड हो तो दो कम्बल प्रयोग किये जा सकते हैं।

साधारणतया हम लोगों के घरों में रुई की रजाई या लिहाफ काम में आते हैं। पर्याप्त रुई भरने से इनमें बोझ अधिक हो जाता है। फिर इनको सहज में धोया भी नहीं जा सकता।

माता के साथ बच्चे का सुलाना—पहिले ही कहा जा चुका है कि माता और शिशु को दो पृथक्-पृथक् पलंगों पर सुलाना

चाहिये। माता के साथ ही शिशु को सुला देना उचित नहीं है। इससे माता और शिशु दोनों ही को हानि पहुँचती है। माता को पूर्ण विश्राम नहीं मिल पाता। बच्चे के हिलने-डुलने तथा मल-मूत्र त्याग करने से माता तुरन्त जाग जाती है। माता और शिशु दोनों एक दूसरे के प्रश्वास की वायु श्वास द्वारा भीतर ग्रहण करते रहते हैं जिससे माता की अपेक्षा शिशु को अधिक हानि पहुँचती है क्योंकि वह कोमल होता है।

इससे कभी-कभी दुर्घटनायें भी होती देखी गई हैं। अत्यन्त गाढ़ी निद्रा में माता के करवट लेने पर शिशु उसके नीचे आ गया है जिससे उसकी मृत्यु हो गई है।

हमारे देश में कुछ स्त्रियाँ बच्चों को सोने के लिये अफीम देती हैं। जल या दूध में थोड़ी सी अफीम घोल कर दे दी जाती है जिससे बच्चा बेहोश सा पड़ा रहता है और माता अपने काम-काज में लगी रहती है। यह प्रथा अत्यन्त निन्दनीय है। इससे बच्चे का शरीर सदा के लिये कमजोर हो जाता है। पाचन शक्ति बिगड़ जाती है। नाड़ी-मंडल पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है और मस्तिष्क का पूरा विकास नहीं होने पाता।

छठाँ अध्याय

वस्त्र

बच्चे ठंड को सहन नहीं कर सकते। तनिक भी ठंढ लगने से उनको सर्दी, जुकाम, निमोनिया, पतले दस्त, पेट का दर्द इत्यादि

रोग हो जाते हैं। इस कारण उनको ठंढ से बचाना बहुत आवश्यक होता है।

वस्त्रों के गुण—अतएव बच्चों के वस्त्र ऐसे होने चाहिये जो उनकी ठंढ से रक्षा करें और साथ में उनके हाथ-पाँव की गति को भी न रोकें। ऊनी वस्त्र ठंढ को रोकते हैं। किन्तु उनमें दो अवगुण होते हैं। एक तो शुद्ध ऊनी वस्त्र बहुत ही खुरदरे होते हैं जिससे शरीर-चर्म को हानि पहुँचाती है। युवावस्था वालों को भी वे सहन नहीं हो सकते। बच्चों का चर्म तो बहुत ही मुलायम होता है।

कुछ ऊनी वस्त्र ऐसे भी आते हैं जो ऊन और सूत या रेशम मिलाकर बनाये जाते हैं। ये खुरदरे नहीं होते। ऐसे ही वस्त्र बच्चों के लिये उपयुक्त होते हैं। जो कपड़ा बाजार में फलालैन के नाम से बिकता है वह बच्चों के लिये बहुत उपयुक्त होता है। कोमलता और गरमी दोनों गुण उसमें पर्याप्त होते हैं।

शुद्ध ऊन में दूसरा अवगुण यह होता है कि वह भीगने पर सिकुड़ता बहुत है और कड़ा पड़ जाता है। जिसमें सूत या रेशम मिला रहता है वे इतने नहीं सिकुड़ते और न कड़े ही पड़ते हैं। इसलिये सदा ऐसे ही वस्त्र लेने चाहिये जो ऊन और सूत या रेशम को मिलाकर बनाये गये हों। ये मुलायम भी होंगे और धोने पर सिकुड़ेंगे भी नहीं।

कुछ वस्त्र इस प्रकार के बने होते हैं कि उनकी बुनावट बहुत छीदी होती है। उनके तारों के बीच में स्थान छूटे रहते हैं जिनके द्वारा वायु भीतर आ जा सकती है। शरीर-चर्म के ऊपर पहिनाने के लिये यह वस्त्र अत्युत्तम होते हैं। इनके ऊपर कोई दूसरा वस्त्र पहिनाया जा सकता है। ये वस्त्र जिनकी बुनावट छीदी होती है, घनी बुनावट वालों की अपेक्षा अधिक गरम होते हैं।

दूसरा गुण, जो बच्चों के वस्त्रों में होना चाहिये वह ढीलापन है। बच्चों को सदा ढीले वस्त्र पहिनाने चाहिये; तंग वस्त्र नहीं। बच्चे सदा हाँथ-पाँव चलाया करते हैं। यही उनका व्यायाम है। इससे उनके शरीर की वृद्धि होती है। वस्त्रों के ढीला रहने से वे अपने हाँथ-पाँव भली भाँति फेंकते रहते हैं। उनकी गति में बाधा नहीं पड़ती। फिर उनके भीतर वायु आती जाती रहती है जिससे पसीना भी सूखता रहता है। वस्त्रों के तंग होने से बच्चों के अंग कस जाते हैं। उनको हाँथ-पाँव चलाने में असुविधा होती है और इससे उनकी वृद्धि रुक जाती है। तंग वस्त्रों में वायु भी भीतर नहीं जाती। इन सब कारणों से तंग वस्त्रों-बच्चों को हानि पहुँचती है। उनके वस्त्र सदा ढीले होने चाहिये। कभी-कभी तंग वस्त्रों से कै-दस्त या अन्य पाचन के विकार होते देखे गये हैं।

जिस प्रकार जाड़ों में बच्चों को शीत से बचाने की आवश्यकता है उसी प्रकार गरमी के मौसम में उनकी ताप से रक्षा करना भी आवश्यक है। उन दिनों में बच्चों के वस्त्र बारीक सूती कपड़े के बने होने चाहिये। यदि ये सछिद्र (Porous) हों तो और भी उत्तम है। गौज के वस्त्र उपयक्त होते हैं। बारीक मलमल भी इस काम में लाई जाती है। उसके वस्त्र हलके और ठंढे रहते हैं। रेशम के वस्त्र यद्यपि पसीना सोखते हैं किन्तु मलमल की अपेक्षा अधिक गरम होते हैं।

जब गरमी कम होने लगे तो ज्यों-ज्यों आवश्यक हो त्यों-त्यों वस्त्रों की संख्या बढ़ा दी जाय। मलमल के झबले के ऊपर ऐसा ही दूसरा हलका कपड़ा पहिना दिया जाय। यदि शीत और अधिक हो तो मलमल के कुरते पर एक ऊनी वस्त्र पहिनाया जा सकता है। किन्तु इतने वस्त्र न पहिनाये जायँ जो भारी हो जायँ। कई वस्त्रों

की अपेक्षा एक गरम वस्त्र उत्तम है। वस्त्र ऐसे होने चाहिये जो शीत से बचाने के लिये पर्याप्त हों किन्तु भारी न हों।

उदर की पेटी (Abdominal binder)—यह फलालैन की एक चौड़ी पट्टी होती है जो उदर के चारों ओर लपेटी जाती है। इसकी चौड़ाई इतनी होती है जिससे बच्चे का उदर ढक जाय। इसका प्रयोजन बच्चे के उदर की ठंढ से रक्षा करना है।

नवजात-शिशु तथा छोटे बच्चों के यह पेटी लगाना बहुत आवश्यक है। बच्चों के उदर में बहुत ही सहज में ठंढ लग जाती है। कभी-कभी गरमी के दिनों में भी ठंढ लग जाती है जिससे उनको पतले दस्त आने लगते हैं या पेट में दर्द होता है। इससे बचाने के लिये यह पेटी बहुत लाभदायक होती है। इसको केवल उदर के चारों ओर लपेट दिया जाता है और उसके सिरे तनियों से बँधे रहते हैं। सिरों को आलपीन से कभी न जोड़ना चाहिये।

वस्त्र कैसे हों—पहिले बताया जा चुका है कि बच्चों के वस्त्र सदा ढीले होने चाहिये। शिशु के वस्त्र इस प्रकार के बनाये जायें कि वे पैरों से पहिनाये जा सकें। उनके गले में एक रेशमी तनी पड़ी हो जिसको पहिनाने के पश्चात् गले में खींच कर बाँध दिया जा सके। उसकी बाहु बिल्कुल ढीली हों। गरमी के दिनों में बाहों का होना आवश्यक भी नहीं है। मलमल के बिना बाहों के झबले गरमी के मौसम के लिये बहुत उपयुक्त होते हैं। जाड़े के वस्त्रों में बाहों का होना आवश्यक है। किन्तु वह इतनी ढीली होनी चाहिये कि उनके पहिनानने में बच्चे को तनिक भी असुविधा न हो।

वस्त्र कैसे पहिनाये जायँ—ऊपर के कथन से यह स्पष्ट है कि वस्त्र बच्चों की पाँवों की ओर से पहिनाने चाहिये। एक हाथ

में शिशु के दोनों पाँव पकड़ कर झबले के गले के भीतर डालकर झबले को ऊपर को सिर की ओर खींचते चले जायँ जब तक कि गला शिशु के गले पर न पहुँच जाय। तब तनी बाँध दें। सिर पर से वस्त्र पहिनाना उचित नहीं है। उतारते समय भी उनको पाँवों की ओर से ही उतारना चाहिये।

मोजे—शिशु को ठंढ से बचाने की आवश्यकता बताई जा चुकी है। इसलिए उसको जाड़े के मौसम में ऊनी वस्त्रों के अतिरिक्त मोजा अवश्य पहिनाना चाहिये। बच्चों को बहुधा ठंढ पाँवों ही में लगती है। इसलिये उनको ऊनी मोजे पहिनाना बहुत आवश्यक है। मोजे मुलायम होने चाहिये।

जाड़े के दिनों में बच्चे के कानों को भी ठंढ से बचाना चाहिये। इसके लिये इस प्रकार की ऊनी टोपियाँ बनी हुई आती हैं जिनको नीचे की ओर खींच कर पहिनाने से कान ढक जाते हैं। हमारे देश में रुई के कन्टोप बनाये जाते थे। अब भी कहीं-कहीं प्रयोग किये जाते हैं। इनसे सिर और कान दोनों ढके रहते हैं। किन्तु यह जल्दी ही गन्दे हो जाते हैं और फिर धोये नहीं जा सकते। ऊन के कन्टोप उत्तम होते हैं। उनको समय-समय पर Lux साबुन से धो डालना चाहिये।

सातवाँ अध्याय

भोजन

माता का दूध—शिशु का भोजन माता का दूध है जिससे उसकी सब आवश्यकतायें पूरी होती हैं और शरीर की वृद्धि होती है।

प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट आदि सब माता के दूध ही से शिशु को मिलते हैं। और ये सब उसी मात्रा में मिलते हैं जो शिशु के लिए आवश्यक होती है। ज्यों-ज्यों शिशु की अवस्था बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों माता का दूध भी गाढ़ा होता जाता है इन अवयवों की मात्रा बढ़ती जाती है और जल की मात्रा कम होती जाती है। इस प्रकार समय और शिशु की आवश्यकता के अनुसार दूध में स्वयं ही परिवर्तन होते चले जाते हैं।

माता के दूध में किसी प्रकार की अशुद्धि या संक्रमण के पहुँचने का संदेह नहीं हो सकता। दूध सीधा स्तन से शिशु के उदर में पहुँचता है। इससे किसी प्रकार भी कोई अवसर ही नहीं रह जाता है कि बाहर से कोई रोग के जीवाणु दूध में पहुँच सकें। माता का दूध सदा अत्यन्त शुद्ध वस्तु है और नौ मास तक शिशु के शरीर की सब आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये पर्याप्त है।

माता के दूध का बच्चे पर प्रभाव—माता के दूध ही से शिशु का शरीर बनता है। इसलिये माता के दूध के गुण-अवगुण का भी शिशु पर स्वभावतः ही बहुत प्रभाव पड़ता है। यदि माता को कब्ज होता है तो बच्चे को भी कब्ज हो जाता है या पेट में दर्द तथा उदर-शूल होने लगता है। यदि माता कोई रेचक वस्तु खा लेती है तो बच्चे को भी दस्त आने लगते हैं। इस कारण माता को अपने भोजन में बहुत ही सावधान होने की आवश्यकता है। उसको कोई देर से पचने वाला गरिष्ट भोजन नहीं करना चाहिये। उसके भोजन में जल का भाग अधिक होना चाहिये। दूध पर्याप्त मात्रा में पिया जाय। फल भी आवश्यक वस्तु हैं जिनके प्रयोग से बच्चे को लाभ होता है। घी, मक्खन, मिश्री, बादाम तथा अन्य शुष्क फल सब लाभदायक होते हैं। इनका प्रयोग करना उचित है।

घी में तलकर बनाये हुये भोजन पकवान आदि गरिष्ठ होते हैं। उनसे बच्चे को पाचन विकार होना स्वाभाविक ही है।

माता के स्वास्थ्य का प्रभाव—माता के स्वास्थ्य तथा मानसिक विचारों का शिशु के स्वास्थ्य तथा वृद्धि पर बहुत प्रभाव पड़ता है। इस कारण माता के स्वास्थ्य का बहुत ध्यान रखना चाहिये। उसको सदा प्रसन्न चित्त रहना उचित है। मन में किसी प्रकार के विकारों का उत्पन्न होना, उद्विग्नता, कलह इत्यादि बातों से, जिनसे माता का चित्त दुखी रहता है, बच्चे को हानि पहुँचती है। घर वालों का भी यह कर्त्तव्य है कि घर में लड़ाई-झगड़े न हों तथा ऐसी कोई बात न हो जिससे माता के चित्त पर बुरा प्रभाव पड़े व उसको दुःख हो।

दूध पिलाने का समय—यद्यपि दूध से बच्चे का शरीर बनता है किन्तु उसको जब तब या प्रत्येक समय दूध पिलाना उचित नहीं है। बहुधा देखने में आता है कि जब भी बच्चा रोता है तो उसको चुप कराने के लिये मातायें दूध पिलाने लगती हैं। इससे दूध पिलाने का कोई भी समय निर्धारित नहीं किया जा सकता और बच्चे को प्रत्येक समय दूध माँगने की आदत पड़ जाती है जिससे अनेक प्रकार के पाचन सम्बन्धी विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

दूध पिलाने का समय नियत होना चाहिये और उसे नियत ही समय पर दूध पिलाना चाहिये। प्रसव के पश्चात् प्रथम दो दिन में दूध कम बनता है। इन दिनों में बच्चे की आँतों में भरा हुआ मिकानियम (Meconium) नामक पदार्थ भी निकलता रहता है। इसलिये उनको केवल चार बार दूध पिलाना पर्याप्त है। जब दूध बहुत कम होता है या कभी-कभी नहीं होता तो बच्चे को शहद या ग्ल्यूकोज (Glucose) जल में मिला कर देना उचित है। दं

दिन के पश्चात् जब दूध भली भाँति होने लगे तो बच्चे को प्रत्येक दो-दो घंटे पर दूध पिलाया जाय। छः सप्ताह के पश्चात् ३ मास तक बच्चे को चौबीस घंटे में २½ घंटे का अन्तर कर दिया जाय और रात्रि को केवल दो वार पिलाया जाय। अर्थात् चौबीस घंटे में आठ वार पिलाया जाय। ज्यों-ज्यों बच्चे की आयु बढ़ती जाय त्यों-त्यों दूध पिलाना कम किया जाय। ३ से ५ मास तक केवल सात वार और ५ से १२ मास तक केवल छः वार पिलाया जाय। आगे की तालिका से यह स्पष्ट हो जायगा।

एक वार में लगभग २० मिनट तक बच्चे को दूध पिलाना चाहिये। कभी-कभी बच्चे अधिक दूध पी जाते हैं तो तुरन्त ही वमन कर देते हैं। इससे कोई हानि नहीं है। किन्तु यदि वे बराबर वमन करते रहें तो चिन्ता की वात है। ऐसी दशा में उनका भोजन २४ घंटे के लिए वन्द कर दें और उनको केवल गरम जल में ग्ल्यूकोज मिला कर दें। यदि वमन इतना अधिक न हो तो भोजन की आधी मात्रा कर दें। यदि आठ वार दूध पिलाना है तो उसको केवल चार ही वार पिलावें। वीच में जल मिलाकर ग्ल्यूकोज देते जावें। यदि समझें कि रोग बढ़ रहा है तो किसी अनुभवी डाक्टर की सलाह लेना उचित है।

दूध पिलाने के दिनों में माता के भोजन, स्वास्थ्य आदि की ओर ध्यान रखने की आवश्यकता बताई जा चुकी है। स्तनों की ओर ध्यान रखना भी बहुत आवश्यक है। यहाँ से बच्चों के रोग पहुँच सकता है। प्रत्येक वार बच्चे के दूध पीने के पश्चात् स्तनों को शुद्ध जल से स्वच्छ कर दिया जाय और उन पर थोड़ी सी श्वेत वैसलीन लगा दी जाय। इससे स्तन का चर्म चटकने नहीं पाता। जब कभी चर्म चटक जाता है तो उसमें त्रिवाई फट जाती है और

माता को दूध पिलाने में बड़ा कष्ट होता है बहुत बार स्तन सूज आता है और पक जाता है। इसलिये स्तनों को स्वच्छ रखना बहुत ही आवश्यक है।

शिशुकी आयु	२४ घंटे में कितनी बार दूध पिलाया जाय	कितने घंटे के अन्तर पर पिलाया जाय	रात्रि में कितनी बार पिलाया जाय
१—३ दिन	४	६	१
३ दिन से ६ सप्ताह तक	१०	२	२
६ सप्ताह से ३ मास तक	८	२½	२
३ मास से ५ मास तक	७	३	१
५ मास से १२ मास तक	६	३	०

दूध कब और किस प्रकार छुड़ाना चाहिये—५ या ६ मास के पश्चात् बच्चे की शारीरिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये माता का दूध अपर्याप्त होता है। जिनको छः मास तक माता का दूध पूर्ण रूप से मिल चुका है उनकी संतोषजनक वृद्धि हो जाती है और छः मास के पश्चात् उनको अधिक पौष्टिक भोजन की आवश्यकता होती है। इसके पश्चात् दूध पिलाने से माता को भी हानि पहुँचती है। वह दुर्बल हो जाती है। इसलिये छः मास के

पश्चात् बच्चे का दूध छुड़ाया जा सकता है। हाँ जो बच्चे दुर्बल होते हैं और पूर्ण वृद्धि लाभ नहीं करते उनको अधिक समय तक माता के दूध की आवश्यकता होती है।

माता का दूध छुड़ाने के पश्चात् गौ का दूध ही एक ऐसी वस्तु है जो बच्चे के लिए हितकर और प्रर्याप्त होता है अतएव छुड़ाते समय बच्चे को गौ का दूध ही देना चाहिये। हृष्ट-पुष्ट बालक गौ के दूध को पचा सकते हैं। अतएव माता का दूध छुड़ाने के समय उनको गौ के दूध का अभ्यास डलवाना चाहिए। बच्चा एक साथ माता का दूध नहीं छोड़ेगा। अतएव उसको धीरे-धीरे अभ्यास डलवाना चाहिये। दो एक वार माता का दूध पिलाया फिर गौ का दूध दिया। शनैः शनैः गौ के दूध को अधिक बार दिया गया। इस प्रकार दो तीन महीने में बच्चे से माता का दूध छुड़ाया जा सकता है।

दूध पिलाने की शीशी—बच्चों को गौ का या बना हुआ दूध शीशी से पिलाया जात है, जिनको Feeding Bottles कहते हैं।
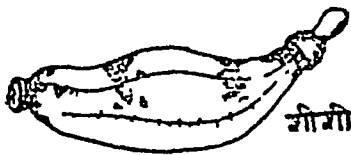
ये बाजार में बिकती हैं और कई तरह की मिलती हैं। इनमें आगे और पीछे की ओर रबड़ की निपिल और टोंट लगी रहती हैं। निपिल से बच्चा दूध पीता है। इनमें विशेष देखने की बातें यह हैं कि वे इस प्रकार की बनी हों कि उनमें दूध रहने न पाये और बुरुश डाल कर उनका प्रत्येक भाग स्वच्छ किया जा सके। जिन शीशियों में दूध रह
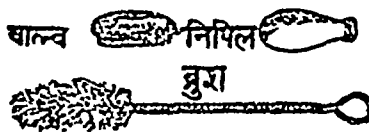
जाता हो और जिनकी बनावट ऐसी हो कि प्रत्येक भाग में बुरुश न पहुँच सके उनको नहीं लेना चाहिये।

इन शीशियों को स्वच्छ रखना बड़ा ही आवश्यक है। इनकी गन्दगी से बच्चे के शरीर में रोगों के जीवाणु पहुँच सकते हैं और उसका जीवन संकट में पड़ सकता है। शीशी को प्रत्येक बार प्रयोग के पश्चात् सोडे और गरम जल से धो देना चाहिये। वास्तव में शीशी को उबालना उचित है। यदि प्रत्येक बार न उबाला जा सके तो दिन में प्रातःकाल प्रयोग करने के पूर्व एक बार तो अवश्य ही उबाल लेना चाहिये। प्रयोग के पश्चात् उसको सोडे और गरम पानी से भली-भाँति स्वच्छ करके एक एल्यूमिनियम के बर्तन में बन्द करके रख देना चाहिये। रबड़ के निपिल और टोंट की ओर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। उनमें दूध जम जाता है जिसमें जीवाणु पहुँच जाते हैं।

गौ का दूध—यद्यपि दूध मनुष्य के लिये अमृत के समान कहा गया है, किन्तु असावधानी के कारण कभी-कभी वह विष बन जाता है। कितने बालकों को गौ के दूध द्वारा उदर का राजयक्ष्मा हो जाता है। दूध को भली प्रकार सुरक्षित न रखने से उनमें कितने ही रोगों के जीवाणुओं का प्रवेश हो जाता है और पीने वाले बच्चे को रोग हो जाता है।

गौ—सब से प्रथम यह देखना चाहिये कि जिस गौ का दूध बच्चे को दिया जा रहा है उसको कोई रोग तो नहीं है। गौ स्वस्थ है। यदि स्वयं इस बात का निर्णय न कर सकें तो किसी जानवरों के डाक्टर से गौ की परीक्षा कराके निर्णय कर लें। किन्तु रोग युक्त गौ का दूध बच्चे को कदापि नहीं दिया जाय।

दूध को उबालना—दूसरी बात दूध के सम्बन्ध में उसका उबालना है। साधारणतया उबालने से १०० शतांश पर दूध के सब फर्मेंट (Ferments) नष्ट हो जाते हैं और उसकी पोषक शक्ति कम हो जाती है। बच्चों के लिये दूध वाटर बाथ (Water bath) में उबालना चाहिये। साधारण किसी भी भगोने में इसका प्रबन्ध किया जा सकता है। भगोने में जल भरकर उसको चूल्हे या अँगीठी पर चढ़ा दें। इस जल में एक छोटे भगोने में दूध भर कर रख द। इस से बड़े भगोने का जल उबलेगा और उसके ताप से छोटे भगोने का दूध गरम हो जायेगा। इससे दूध का ताप ८० शतांश से ऊपर न जायगा। जितने रोग के जीवाणु हैं वे सब नष्ट हो जायेंगे क्योंकि वे ८०.c. पर जीवित नहीं रह सकते। किन्तु दूध के फर्मेंट और शक्ति-वर्धक अवयव में से ८० प्रतिशत नष्ट होने से बच जायँगे।

इस प्रकार दूध को गरम करके बच्चों को देना चाहिये।

दूध को सुरक्षित रखना—यह अत्यन्त दुस्तर कार्य है। साधारण दशाओं में दूध को जब वह प्रातःकाल दुह कर लाया जाता है, उबाल कर रख दिया जाता है। और दिन में जब भी आवश्यकता होती है उसी ही को फिर से उबाल कर दे दिया जाता है। यह अत्यन्त वर्जनीय प्रथा है और रोगों का आह्वान करना है।

दूध को संतोष पूर्वक सुरक्षित रखने के लिये यह आवश्यक है कि उसको वाटर बाथ (Water bath) में उबाल कर तुरन्त ही शीघ्रता के साथ ठंडा किया जाय और तब रिफ्रीजरेटर (Refrigerator) में रख दिया जाय। किन्तु प्रत्येक व्यक्ति रिफ्रीजरेटर नहीं ले सकता। जो रिफ्रीजरेटर का उपयोग नहीं कर सकते उनके लिये उचित है कि दूध को शीतल करके थर्मोस में भरकर बरफ में रखें। साधारण बोतल में भरकर भी बरफ में रख सकते हैं। यदि

बरफ में न रख सकें तो उत्तम है कि दूध को रखने का प्रयत्न ही न करे। प्रातः और सायं जब ताजा दूध दुह कर आवे तो उपरोक्त विधि से गरम करके बच्चों को पिला दें। शेष समय के लिए ग्लैक्सो, वाटरबरी, हार्लिक इत्यादि में से किसी का प्रयोग करें। साधारणतया रखे हुए दूध की अपेक्षा यह दूध कहीं अधिक संतोष-जनक है।

बहुत बार बच्चे को माता का दूध नहीं मिलता। यदि माता को राजक्षयमा (Tuberculosis), हृद्रोग (Cardiac Diseases) या वृक्क के रोग (Bright' diseases), पाण्डु (Anaemia) आदि रोग हों तो उसको स्वयं ही बच्चे को दूध नहीं पिलाना चाहिये। किन्तु बहुत से बच्चों का जन्म के पश्चात् ही माता से, वियोग हो जाता है। कभी-कभी माता के जीवित रहने पर भी माता के इतना दूध नहीं होता कि वह बच्चे के लिये पर्याप्त हो। ऐसी दशाओं में बच्चे को गौ का ही दूध पिलाना पड़ता है।

गौ और माता के दूध में बहुत अन्तर होता है। निम्नलिखित सारिणी में माता और गौ के दूध के अवयवों की तुलना की गई है।

दूध	प्रोटीन	वसा	कर्बोज	लवण	जल	विशिष्ट गुरुत्व
स्त्री का दूध	१·२४	१·२१	५·६	०·३५	९०.७८	१०३४
गौ का दूध	३·०२	३· ८	४·८८	०·७१	८७·१७	१०३४

इस अंक से मालूम होता है कि स्त्री के दूध की अपेक्षा गौ के दूध में प्रोटीन तिगुना होता है, बसा भी तिगुनी होती है। किन्तु कर्वोज अर्थात शर्करा कम होती है। यदि यह दूध इसी प्रकार से बच्चे को दिया जाय तो वह उसको नहीं पचा सकेगा। प्रोटीन के अधिक होने से बच्चे को उदरशूल हो जायगा तथा दस्त आने लगेंगे। बसा के अधिक होने से पेट फूल जायगा और अपच के दस्त आने लगेंगे। शर्करा के कम होने से उसको उतनी शक्ति नहीं मिलेगी जितनी की उसको आवश्यकता है।

गौ के दूध को माता के दूध के समान बनाना—इस कारण गौ के दूध को बच्चे को देने से पूर्व उसको ठीक माता के दूध के समान बना देना चाहिये जिससे उसमें अवयवों की मात्रा माता के दूध के समान ही हो जाय। इसलिये जितना दूध हो उसमें तिगुना जल मिला दें। इसमें प्रोटीन, बसा और लवण की मात्रा प्रायः स्त्री के दूध के समान हो जायेगी। किन्तु शर्करा की मात्रा कम हो जायगी। इसलिये शर्करा ऊपर से मिला दी जाय, दस छटाँक दूध में आधी छटाँक दुग्धोज शकर (Milk Sugar) मिलाने से यह कमी पूरी हो जाती है। साधारण गन्ने की शकर की अपेक्षा यह बच्चों के लिये अधिक हितकर होती है। यदि साधारण शकर मिलानी हो तो इससे आधी मिलाना पर्याप्त है।

बच्चों के प्रथम तीन-चार मास में प्रोटीन की अपेक्षा बसा की अधिक आवश्यकता होती है। और बसा को प्रोटीन की अपेक्षा वे सहज में पचा लेते हैं। इस अवस्था में दूध में बसा से प्रोटीन आधी होनी चाहिये। किन्तु दुगुना जल मिलाने से प्रोटीन और बसा बराबर ही रहते हैं। इसलिये जिस दूध में जल मिलाकर उसको बच्चे के पीने के लिये तैयार किया जाय उसमें पहिले ही से बसा की मात्रा बढ़ा दें।

दूध में बसा की मात्रा बढ़ाना—बसा की मात्रा बढ़ाना बहुत सहज है। बसा दूध में अत्यन्त सूक्ष्म तैलीय कणों के रूप में रहती है। इसके चमकते हुए कण माइक्रोस्कोप द्वारा देखे जा सकते हैं। यदि दूध को, सीधे ऊँचे बर्तन में, जैसे कि गिलास में भरकर कुछ समय के लिये रख दें तो कुछ ही घंटे पश्चात् दूध की सारी बसा दूध के ऊपरी भाग में आ जायगी। इसी को क्रीम (Cream) कहा जाता है। चौबीस घंटे तक रखने से सारी क्रीम ऊपरी भाग में आ जायगी। इस प्रकार एक चौड़े मुँह की बोतल में दूध को भर कर उसकी क्रीम निकाली जा सकती है। क्रीम बनाने की मशीनें भी आती हैं जिनसे सारी क्रीम तुरन्त निकाली जा सकती है। साधारणतया बोतल में रख कर बनाई हुई क्रीम में १६% बसा रहती है। मशीन से बनी हुई क्रीम में २०% बसा होती है। यदि बोतल में दूध को चार घंटे तक रहने दिया जाय तो इसके ऊपरी तिहाई भाग में १०% बसा रहेगी। आधी बोतल में ७% बसा होगी।

बच्चे के लिये जो दूध बनाया जाय वह इसी १०% बसा वाले दूध से बनाया जाय। इसी में दुगुना भाग जल मिला कर दस छटाँक तैयार हुये दूध में आधी छटाँक दूध की शकर मिला दी जाय।

इस दूध में बच्चे की आयु के अनुसार परिवर्तन करना पड़ेगा। दो दिन के और दो महीने के बच्चे के भोजन में अवश्य ही अन्तर होगा। प्रारम्भ में बच्चे की पाचन शक्ति बहुत ही कमजोर होती है। इसलिये प्रथम सप्ताह में तिगुना या चौगुना जल मिलाना चाहिये।

आगे की सारिणी में बच्चे के जन्म के दूसरे दिवस से लेकर पाँचव मास तक के लिये दूध में उपस्थित अवयवों की मात्रा दिखाई गई है जिनको मिलाकर बच्चे के लिये दूध तैयार करना चाहिये।

	१	२	३	४	५
१०% (वसा वाला) दूध	१ छटाँक	१½ छटाँक	२ छटाँक	२½ छटाँक	३ छटाँक
चूने का पानी	½ ,,	½ ,,	½ ,,	½ ,,	½ ,,
दूध की शकर (Milk Sugar)	½ ,,	½ ,,	½ ,,	½ ,,	½ ,,
उबला हुआ जल	८½ ,,	८ ,,	६½ ,,	६ ,,	५½ ,,

जन्म के दूसरे दिवस पर नं० १ के अनुसार दूध बना कर दिया जाय। चौथे दिन नं० २ के अनुसार, ७ दिन पर नं० ३ के अनुसार दिया जाय और एक मास तक इसी को रखा जाय। दूसरे और तीसरे मास में नं० ४ के अनुसार और चौथे और पाँचवें मास में नं० ५ के अनुसार बनाकर दूध दिया जाय।

भोजन में परिवर्तन और उसमें भिन्न-भिन्न अवयवों की मात्रा का घटना-बढ़ना बच्चे की शारीरिक अवस्था पर निर्भर करता है। हृष्ट-पुष्ट बच्चों को शीघ्र ही नं० ३ या ४ का दूध दिया जा सकता है। यदि वे दुर्बल हैं, पाचन विकृत रहता है, पचाने की शक्ति दुर्बल है, तो ६ या ७ मास पर भी नं० ५ का भोजन देना पड़ेगा।

बलवान होने पर तीसरे ही मास में नं० ५ का भोजन दिया जा सकता है।

एक बार में बच्चे को कितना भोजन दिया जाय— अब एक और आवश्यक बात रह जाती है। एक बार में बच्चे को कितना भोजन दिया जाय। यह भी बच्चे की शारीरिक दशा और पाचन शक्ति पर निर्भर करता है। जितने भोजन से उसको कोई असुविधा नहीं होती, पाचन का विकार नहीं होता, भोजन के अगले समय तक पहिले दिया हुआ भोजन पच जाता है, तो वही मात्रा उसके लिये उपयुक्त है। निम्नलिखित अंकों में भिन्न-भिन्न अवस्था पर दी जाने वाली उपयुक्त मात्रा दिखाई गई है। किन्तु उनमें आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन किया जा सकता है।

७ दिन के बच्चे को	प्रत्येक	बार	½ से १	छटाँक तक	दूध देना	चाहिये
२ सप्ताह	"	"	१ से १½	"	"	"
३ "	"	"	१ से २	"	"	"
४-८ "	"	"	१½ से २½	"	"	"
२ मास	"	"	१½ से २½	"	"	"
३ से ५	"	"	२ से ३	"	"	"
६	" "	"	२½ सें ३½	"	"	"
८-१०	" "	"	३ से ४	"	"	"

४ या ५ मास के पश्चात् बच्चे के दूध में प्रोटीन की मात्रा बढ़ा देनी चाहिये। प्रथम इसको वसा के बराबर और फिर शनैः शनैः वसा से दुगुनी कर देनी चाहिये। ऐसा करना बहुत सहज है। जहाँ पहिले १०% वाला दूध लिया था वहाँ अब ७% वसा वाला दूध लेना चाहिये। और उसमें जो जल मिलाया जावे धीरे-

धीरे उसकी मात्रा घटा देनी चाहिये। नौ मास के बच्चे को, जो दुर्बल न हो, गौ का शुद्ध दूध दिया जा सकता है।

दूध पिलाने की शीशी को स्वच्छ रखने की आवश्यकता पहिले ही बताई जा चुकी है। जितना भी इस पर ध्यान दिया जाय उतना ही कम है। रबड़ के निपिल और पीछे की टीट को स्वच्छ रखना बहुत ही आवश्यक है। दूध पिलाने के पूर्व और पश्चात् दोनों बार शीशी को ठंढे जल से धोकर सोडा मिले हुये जल में (२ सेर जल ½ छटाँक सोडा) रख दें। दिन में कम से कम एक बार शीशी को अवश्य ही उबाल लें और फिर सोडा युक्त जल में रख दें।

भोजन का अभिप्राय है वृद्धि। अतएव यह बराबर ध्यान रखना चाहिये कि बच्चे को जो भोजन मिल रहा है वह पर्याप्त और उपयुक्त है या नहीं। इसका सबसे बड़ा द्योतक बच्चे की शारीरिक दशा और वृद्धि है। बच्चे का शरीर भार बराबर बढ़ना चाहिये। प्रत्येक सप्ताह में बच्चे को तौल कर मालूम कर लेना चाहिये कि इस सप्ताह बच्चा कितना बढ़ा है। यदि वृद्धि नहीं होती है तो उसका कारण खोजना चाहिये। रोग और भोजन की त्रुटि के अतिरिक्त बच्चे के न बढ़ने का और कोई कारण नहीं हो सकता। कारण को मालूम करके उसको दूर करना चाहिये।

बच्चे को उपयुक्त भोजन मिलने के चिन्ह—जब बच्चे को उपयुक्त और पर्याप्त भोजन मिलता रहता है तो वे प्रसन्न रहते हैं, हाथ, पाँव शीघ्रता से चलाते रहते हैं, उनका मुख दीप्तिमान रहता है। उनकी निद्रा गाढ़ी होती है। वे रोते नहीं। उनको शौच बँधा हुआ, जैसा बच्चे का होना चाहिये, दिन रात में तीन-चार बार और दुर्गन्ध रहित होता है। ठीक-ठीक भोजन न मिलने से बच्चे रोते

रहते हैं; वे बेचैन रहते हैं। हरे, पीले, दुर्गन्धियुक्त दस्त आते हैं। मुँह से भी प्राय: दूध गिराते हैं। निद्रा भी ठीक नहीं आती है। यदि यह दशा कुछ दिन तक चलती रहे तो बच्चे का भोजन चौबीस घंटे के लिये बन्द कर दिया जाय और उसको गरम जल, ग्ल्यूकोज सहित वा रहित, दिया जाय। तत्पश्चात् दूध को अधिक पतला करके देना चाहिये। दूध में चूने के पानी की मात्रा बढ़ा देना उचित होगा। यदि पेट में दर्द होता है तो समझना चाहिये कि दूध में प्रोटीन अधिक है। अतएव उसकी मात्रा कम करने का प्रयत्न करना चाहिये।

इस प्रकार जैसे भी हो, यदि आवश्यक हो तो डाक्टर की सलाह से, बच्चे की वृद्धि के रुकने का कारण खोज कर उसका उचित उपाय करना चाहिये।

विटेमीन—जिन बच्चों को माता का दूध नहीं मिलता और बना हुआ ही दूध देना पड़ता है, उनको विटेमीन नहीं मिल पाता। इस कारण विटेमीन की कमी पूरी करने के लिये उनको फल का रस देना बहुत आवश्यक है। अनार, संतरा, अंगूर किसी भी फल का रस दिया जा सकता है। दिन में एक या दो बार रस देना चाहिये। जिन बच्चों को केवल बने हुये दूध ही पर रहना पड़ता है उनको रिकेट्स (Rickets) स्कर्वी (Scurvy) आदि रोग हो जाते हैं।

कब तक बच्चे को दूध दिया जाय—बच्चे को नवें महीने तक यह दूध पिलाया जा सकता है। नौ महीने पर पहुँच कर यदि बच्चा स्वस्थ है तो उसको गौ का साधारण दूध दिया जा सकता है। यदि उसके प्रयोग से कोई हानि मालूम हो तो फिर इसमें जल

मिला कर तैयार किये हुये दूध को दिया जाय। कुछ समय के पश्चात् गौ का दूध फिर दिया जा सकता है।

किन्तु दुर्बल बच्चों को अधिक समय तक इसी दूध का प्रयोग करवाना होगा। यदि आवश्यक हो तो एक वर्ष तक प्रयोग करा सकते हैं।

दूध के जमने से जो छेना बनता है उसको गाढ़ा नहीं बनने देता। वह हलका बनता है। और इस कारण सहज में पच जाता है। जब बच्चे के पेट में दर्द होता है तो बहुधा दूध में जौ का पानी मिला दिया जाता है।

दलिया—एक वर्ष की अवस्था पर केवल जौ के पानी से काम नहीं चलेगा। जौ का दलिया बना देना चाहिये। गेहूँ, अरारोट या जई किसी भी वस्तु का दलिया बनाया जा सकता है। जई के बन्द डिब्बे Quaker Oats के नाम से बाजार में बिकते हैं। यह बहुत ही पुष्टिकारक पदार्थ है। गेहूँ और अरारोट में भी बहुत शक्ति है। इनका दलिया बनाकर उसमें दूध मिला दिया जाता है और मीठा करने के लिये थोड़ी चीनी भी डाल दी जाती है। इससे दलिया स्वादिष्ट और पौष्टिक हो जाता है।

बच्चे का भोजन बढ़ाना—बच्चे का भोजन बहुत सावधानी से बढ़ाया जाय। प्रथम कुछ दिन तक उसको केवल गौ का शुद्ध दूध दिया जाय। तत्पश्चात् थोड़ा सा दलिया जिसमें दूध अधिक रहे दिन में एक बार दिया जाय। जब बच्चा इसको पचाने लगे और उससे कोई विकार न हो तब दलिये की मात्रा बढ़ा दी जाय। तत्पश्चात् दिन में दो बार दलिया और शेष बार दूध दिया जाय। एक या दो मास पश्चात् शेष बार भी दूध के साथ बिस्कुट या डबल रोटी के एक या दो छोटे-छोटे टुकड़े दिये जायँ। कुछ समय में शनैः-शनैः इनकी मात्रा बढ़ाई जा सकती है। फिर प्रत्येक बार भोजन में दूध, दलिया, डबल रोटी के टुकड़े, बिस्कुट आदि दिये जा सकते हैं। ज्यों-ज्यों बच्चे की आयु बढ़ती है त्यों-त्यों इनकी मात्रा भी बढ़ती जाती है। साथ में बच्चे को फल का रस भी मिलना चाहिये। नारंगी का रस सबसे उत्तम है। १ छटाँक

नारंगी का रस प्रातःकाल के भोजन के साथ दिया जाय। अन्य फल जैसे अंजीर या सेव भी देने चाहिये। अंजीर से कब्ज नहीं होने पाता। इनको उबाल कर अथवा भाप ही पर गला कर दिया जा सकता है, इसको Stew करना कहते हैं। ये फल बड़े गुणकारी होते हैं।

भोजन में प्रोटीन को बढ़ाना—यह बहुत आवश्यक है। प्रोटीन उपयुक्त रूप में अंडे में मिलता है। दालों में तथा मटर में भी अधिक होता है। मांस प्रोटीन का भण्डार ही है। यह माना जाता है कि मांस और अंड़े का प्रोटीन सहज में पच जाता है और उसका आत्मीकरण भी शीघ्र ही हो जाता है। दाल और मटर का प्रोटीन देर से पचता है। किन्तु उबालने तथा पकाने से उनका प्रोटीन भी शीघ्र ही पच्य हो जाता है। इस कारण दाल, मटर या मांस का शोरवा बच्चे को दिया जा सकता है। १२ से चौबीस मास के बच्चे को दिन में एक बार ३ या ४ छटाँक मटर या मांस का शोरवा मिलना चाहिये। दो वर्ष के पश्चात् तीसरे वर्ष में इस शोरबे की मात्रा ६ छटाँक कर देनी चाहिये। और इसमें अरारोट मिला कर इसको गाढ़ा कर देना चाहिये।

अंडा—अंडा दूसरे वर्ष में न देकर तीसरे वर्ष में अर्थात् चौबीस मास के पश्चात् दिया जाय। यह गरमी अधिक करता है। यदि बच्चा कमजोर हो तो दूसरे वर्ष में भी दिया जा सकता है। अंडे में दो भाग होते हैं। एक श्वेत और दूसरा पीला। श्वेत भाग गरम नहीं होता, किन्तु उसमें शक्ति भी पीले की अपेक्षा बहुत थोड़ी होती है। जब अंडा दिया जाय तो पहिले केवल श्वेत भाग ही को दिया जाय। इसको दूध या जल में मिला कर दे सकते हैं। दोनों को मिलाकर एक चम्मच से जोर से फेंटा जाता है और उसके पश्चात् छान कर प्रयोग किया जाता है।

इस प्रकार पहिले श्वेत भाग को प्रयोग कराया जाय। जब वह अनुकूल आ जाय तो थोड़े से पीले भाग को दूध में मिलाकर दिया जाय। धीरे-धीरे इसको बढ़ाया जा सकता है।

दूसरे वर्ष के पश्चात् इसका प्रयोग बच्चे के लिये बहुत हित-कारी है।

मांस—मांस का प्रयोग दो प्रकार से किया जाता है, एक मांस का रस और दूसरा शोरवा। जो बच्चे केवल दूध पर उन्नति नहीं करते उनका शारीरिक भार नहीं बढ़ता, पीले रक्त हीन दिखाई देते हैं, मांस ढीला और चर्म लटकता हुआ होता है, उनके लिए मांस का रस अत्युत्तम वस्तु है। यह न केवल भोजन है किन्तु औषधि की भाँति काम करता है।

मांस का रस बनाने के लिये बकरी के छोटे बच्चे के मांस को लेकर एक चाकू से छोटे-छोटे टुकड़ों में काट देना चाहिये। उसमें तनिक सा नमक मिला दिया जाय। तत्पश्चात् उसको एक स्वच्छ वस्त्र में लपेट कर खरल में कूट कर उसको निचोड़ लिया जाय। इसको निकालने की छोटी सी मशीन भी आती है जो बाजार में बिकती है। छोटे बच्चों को इस रस की दो या तीन चाय का चम्मच देना पर्याप्त है। बच्चे के बड़े होने पर तीन-चार बड़े चम्मच दिये जा सकते हैं।

मांस का शोरवा साधारण शाकों के शोरवे या रसे की भाँति तैयार होता है। मांस को भली भाँति धोकर इच्छित जल की मात्रा में रख कर बर्त्तन को ढँक कर धीमी आग पर चढ़ा दें। और उसको धीमे-धीमे पकावें। २० मिनट या आध घण्टे के पश्चात् उसको उतार कर मांस को अलग निकाल दें। इस शोरवे को मसाला आदि

देकर भली भाँति पका लें। किन्तु बच्चों को मसाले का अभ्यस्त नहीं करना चाहिये।

साधारण भोजन—दो वर्ष में बालकों के प्रायः सभी दाँत निकल आते हैं। केवल कुछ कीले रह जाते हैं। वे इस समय तक चलने भी लगते हैं। इस कारण तीसरे वर्ष में उनको कुछ साधारण भोजन देना प्रारम्भ कर देना चाहिये। मूँग की पतली घुटी हुई दाल थोड़े नरम चावल के साथ अल्प मात्रा में एक बार दिन में दी जाय। दूध और चावल या अरारोट अथवा तीखुर मिलाकर और भली भाँति पकाकर देने में कोई हानि नहीं है। धीरे-धीरे इनको बढ़ाते जायँ। कुछ समय पश्चात् रोटी दी जा सकती है। शनैः-शनैः बच्चा जो अब बालक हो चुका है, अभ्यस्त हो जायगा।

बच्चे और बालकों को भोजन देते समय सदा भोज्य पदार्थ की उपयोगिता और उससे बच्चे को होने वाले हानि और लाभ की ओर ध्यान रखना चाहिये, केवल उनके स्वाद की ओर नहीं। खोवे की मिठाई और घी में तले हुये पकवान को बालकों के लिये विष के समान समझना चाहिये। उनके भोज्य-पदार्थों का निरीक्षण पूर्णतया वैज्ञानिक दृष्टि से करना चाहिये और देखना चाहिये कि जो पदार्थ बच्चे या बालक को मिल रहे हैं उनसे उसको कितनी पोषक शक्ति मिलती है। उनमें विशिष्ट अवयवों की कमी तो नहीं है, जिससे बालक को उसकी अभीष्ट शक्ति न मिलती हो या भोजन का आत्मीकरण न होता हो। इन सब बातों का पूरा विचार करके बालक के भोजन को निर्धारित करना चाहिये।

बाल्यकाल में होने वाले कुछ पाचन सम्बन्धी विकार

कै या वमन—यदि दूध पीने के पश्चात् तुरन्त ही कै हो जाय और वैसा ही दूध निकले जैसा पिया था तो समझना चाहिये कि बच्चे ने दूध अधिक पी लिया था कभी-कभी जब बच्चे अधिक दूध पी जाते हैं तो उसको तुरन्त निकाल देते हैं।

बहुत जल्दी-जल्दी दूध पीने से भी ऐसा होता है। साधारणतया एक बार दूध पीने में बच्चे को वीस मिनट लगने चाहिये। जल्दी दूध पीने का मुख्य कारण निपिल के छेद का बड़ा होना होता है। इस कारण निपिल को देखना चाहिये। और यदि छेद बड़ा हो गया है तो दूसरा नया निपिल शीशी में लगा देना चाहिये।

बच्चे का पेट दबने से भी दूध बाहर निकल आता है।

मन्दाग्नि तथा पाचन के दूसरे रोगों में भी कै होती है। यदि दूध पीने के कुछ समय पश्चात् कै हो और दूध फट कर निकले तथा उसमें खट्टी गन्ध हो तो समझना चाहिये कि आमाशय में अम्ल की मात्रा अधिक है। इसका कारण अधिक भोजन करना होता है। शर्करा तथा प्रोटीन के अधिक होने से भी ऐसा होता है। यदि ऐसा हो तो इन वस्तुओं को कम कर देना चाहिये। और दूध में चूने के पानी की मात्रा बढ़ा देनी चाहिये।

यदि इन उपायों से दशा न सुधरे तो तुरन्त डाक्टर को दिखाना चाहिये।

पेट का फूलना या डकार आना—प्रायः पेट फूलने का कारण भी दूध में शक्कर की अधिकता होती है। शक्कर अधिक होने से वायु अधिक बनती है और उससे पेट फूल जाता है तथा डकार

भी आने लगती हैं। इस बात की जाँच करनी चाहिये और दूध में शक्कर की मात्रा कम कर देनी चाहिये। चूने या जौ का पानी दूध में अधिक मिलाया जाय।

पेट में दर्द होना—पेट में दर्द होने का कारण मुख्यतः प्रोटीन की अधिकता होती है। बच्चा प्रोटीन को नहीं पचा पाता। इस कारण उससे वायु बनती है, पेट में दर्द होता है और दस्त में दूध की फुटकियाँ—छोटी-छोटी श्वेत रंग की गाँठें सरीखी—निकलती हैं। जब ऐसा हो तो दूध को पतला कर देना चाहिये, अर्थात् उसमें जल की मात्रा बढ़ा दी जाय।

प्रोटीन को पचाने के लिये Peptonising Powder नामक दवा बाजार में मिलती है। १० छटाँक दूध में इस चूर्ण का २० ग्रेन मिलाना काफी होता है। उससे प्रोटीन का थोड़ा पाचन हो जाता है। जिन बच्चों की पाचन-शक्ति दुर्बल हो उनके दूध में इस ओषधि को अवश्य मिलाकर देना चाहिये। इसका प्रभाव केवल प्रोटीन ही पर होता है। आमाशय में जाने से पूर्व ही उसका कुछ पाचन हो जाता है। शेष पाचन आमाशय में होता है।

कब्ज—कब्ज से बच्चे और बड़े सभी को अनेक रोग हो जाते हैं, विशेष कर बच्चों को, पेट का दर्द, पेट फूलना, कै, डकार बहुधा कब्ज ही के कारण होते हैं। बच्चे को दस्त कम आने लगते हैं। उनकी संख्या या मात्रा अथवा मात्रा और संख्या दोनों कम हो जाते हैं। बच्चे का पेट फूलता है, पेट में दर्द होता है। दस्तों में दुर्गन्ध अधिक होती है।

बच्चों के लिये जन्मघुटी उत्तम वस्तु है। यह पंसारियों के यहाँ बिकती है। सप्ताह में एक या दो बार इसका काढ़ा बना कर देने से बहुत लाभ होता है। जैतून का तेल (Olive oil) भी एक चम्मच

सप्ताह में एक बार देने से कब्ज नहीं रहता। जिन बच्चों को सदा कब्ज रहता हो उनको Malt Sugar नित्य प्रति दूध में देना चाहिये। यह हलके जुल्लाब की भाँति काम करती है। Syrup of Figs बहुत उत्तम वस्तु है। यदि इनसे भी कब्ज दूर न हो तो अंडी के तेल का प्रयोग किया जाय। आवश्यकतानुसार एक चम्मच तेल काफी है।

उदर की मालिश भी उपयोगी होती है। जिस दिशा में घड़ी की सूई घूमती है उसी दिशा में उदर पर हाथ फेर कर उसकी मालिश की जाय।

आठवाँ अध्याय

शौच

जिस प्रकार बच्चे के भोजन, वस्त्र, निद्रा आदि का ध्यान रखना आवश्यक है; उसी प्रकार बच्चे के शौच का भी ध्यान रखना चाहिये। भोजन के उपयुक्त अथवा अनुपयुक्त होने का तथा बच्चे के स्वस्थ अथवा अस्वस्थ होने का सबसे बड़ा द्योतक बच्चे का शौच है। शौच से बच्चे के रोग-ग्रस्त होने की पहिले ही से सूचना मिल जाती है। शौच में किसी प्रकार का विकार होते ही तुरन्त देखना चाहिये कि कहाँ पर त्रुटि है। भोजन में कौन अनुचित बात है, किस अवयव में त्रुटि है, किसमें घटा-बढ़ी करने की आवश्यकता है। ऐसा करने से भविष्य में होने वाले रोग की रोक-थाम हो जायगी।

बच्चे कितनी बार मल त्याग करते हैं—प्रथम तीन मास में बच्चे दो तीन या अधिक से अधिक चार बार मलत्याग करते हैं।

पहिले दो या तीन दिन में अधिक करते हैं, फिर तीन बार करने लगते हैं। तीन मास के पश्चात् प्रायः दो बार करते हैं, यदि दस्तों की संख्या इससे अधिक हो तो कोई विकार समझना चाहिये।

स्वस्थ मल—स्वस्थ दशा में दस्त एक रस, गाढ़े पीले रंग का और गंध रहित होता है। उसमें फुटक नहीं होती और न वह लसदार होता है। वस्त्र में उसका धब्बा नहीं लगता। धोने से सहज ही में धुल जाता है। यदि इस प्रकार का दस्त हो तो उसको उत्तम स्वस्थ मल समझना चाहिये। जब मल में गाँठें या फुटकें होती हैं तो श्वेत रंग की छोटी-छोटी गाँठें पीले या हरे रंग के मल में दिखाई देती हैं, किन्तु मल से पृथक् रहती हैं, उसमें एक रस नहीं हो जातीं। जैसा पहिले बताया जा चुका है। ये फुटकें दूध की प्रोटीन से बनती हैं।

मल का रंग—जब बच्चे को रोग हो जाता है तो मल का रंग और रूप बदल जाता है। हरे दस्त प्रायः बच्चों को यकृत के विकार से आने लगते हैं। उनमें पित्त अधिक होता है, किन्तु और कोई रोग नहीं होता। ऐसी दशा में दूध में जल मिलाकर उसको पतला कर देना चाहिये और उसमें शकर कम कर देनी चाहिये।

प्रवाहिका (Diarrhoea)—होने पर दस्तों की संख्या बढ़ जाती है और उनका रूप भी बदल जाता है। पानी की मात्रा उनमें अधिक होती है। वह हरे या पीले रंग का फटा हुआ होता है और उनमें फुटकें पृथक् होती हैं। रोग जितना तीव्र होता है उतनी ही उसमें जल की मात्रा अधिक रहती है और दस्तों की संख्या भी

अधिक होती है। यदि ऐसा हो तो तुरन्त किसी डाक्टर को दिखाना चाहिये।

कभी-कभी दस्त काला होता है। यदि बच्चे को ओषधि के रूप में लोह और बिस्मथ (Bismuth) मिल रहे हैं तो इनके प्रभाव से दस्त काला हो जाता है। उसमें चिन्ता की कोई बात नहीं है। किन्तु कभी-कभी रक्त के कारण दस्त काला हो जाता है। अतएव डाक्टरी परीक्षा और उपचार की आवश्यकता होती है।

श्लेष्मा—इसको साधारणतया आँव कहा जाता है। साधारण दस्त में इसका कुछ न कुछ भाग सदा रहता है। किन्तु जब श्लेष्मा अधिक आने लगता है तो रोग का चिह्न होता है। मन्दाग्नि (Dyspepsia) में बच्चों के पेट में दर्द होता है, हरे पीले फटे हुये दस्त आते हैं जिनमें आँव की मात्रा अधिक रहती है। पेट में दर्द होकर आँव निकलती रहती है। कभी बिना दर्द के भी आँव निकलती है।

पेचिश (Dysentery)—में, जिसको साधारणतया आँव खून के दस्त या पेचिश कहते हैं, आँव सदा ही आती है। कभी-कभी इसके साथ रक्त भी आता है। प्रत्येक बार जब दस्त आता है तो उसके साथ पेट में ऐंठन होती है और आँव आँती है। बच्चा बड़ा विकल रहता है। इस रोग में ज्वर भी होता है। बच्चा शीघ्र ही बड़ा दुर्बल हो जाता है। यह रोग बच्चों के लिये बहुत भयंकर होता है। इस कारण तुरन्त डाक्टर की सलाह से उपचार करना चाहिये।

प्रवाहिका (Diarrhoea) में भी आँव आती है। दस्त में निकले हुये पानी में आँव के छिछड़े से रहते हैं। इस रोग में पेट में ऐंठन नहीं होती है। केवल दस्त पानी की तरह आता है। दस्तों की संख्या बहुत होती है।

जल की आवश्यकता—पेचिश और प्रवाहिका दोनों में बच्चे के शरीर से जल का बहुत सा भाग बाहर निकल जाता है, जिससे उनको अत्यन्त हानि पहुँचती है। बच्चे जल की कमी को बिल्कुल सहन नहीं कर सकते। इस कारण उनको जल बराबर देते रहना चाहिये। जब शरीर से जल की अधिक हानि हो जाती है तो डाक्टरों को सुई के द्वारा अथवा किसी शिरा द्वारा नमक युक्त जल (Saline Solution) शरीर में प्रविष्ट करना पड़ता है।

बच्चे के मल का सदा निरीक्षण करते रहना चाहिये। यदि उसमें कोई भी विकार मिले तो उसका तुरन्त प्रबन्ध करना आवश्यक है। यदि विकार अधिक मालूम हो तो उसकी उचित चिकित्सा का आयोजन होना आवश्यक है।

इसी सम्बन्ध में एक बहुत आवश्यक बात यह है कि बच्चे को नियत समय पर मल त्याग करने की आदत डलवाई जाय। नियत समय पर मल त्याग करने से उसका स्वास्थ्य उत्तम रहता है और सदा जीवन भर के लिये आदत बन जाती है। बच्चे तथा बालक आदत के बहुत वशीभूत होते हैं। एक बार जो आदत बन जाती है या जिस समय पर कोई कर्म करते हैं, फिर उसी समय पर वैसा ही करने का उनका स्वभाव हो जाता है।

प्रारम्भ ही से बच्चे को समय पर मल त्याग की आदत डलवानी चाहिये। दो-तीन मास की आयु से ही बच्चे को प्रातः और सायं नियत समय पर मल त्याग करने का प्रयत्न करना उचित है। उसको पांवों पर लिटा कर दस्त करवाना चाहिये। यदि वह दस्त न करे तो भी कुछ समय तक प्रयत्न करना चाहिये। पेट को दबाना या पेट की मालिश करना भी दस्त कराने का एक उपाय है। यदि प्रयत्न

करने पर भी बच्चा दस्त न करे तो साबुन की एक बत्ती बना कर उसको मलद्वार द्वारा भीतर प्रविष्ट कर दी जाय। उससे तुरन्त मल त्याग हो जायगा। सम्भव है एक या दो दिन तक यह प्रयोग करना पड़े। किन्तु तत्पश्चात् स्वयं ही समय पर दस्त होने लगेगा।

बच्चे को यह आदत डालना बहुत आवश्यक और अभीष्ट है। इससे माता तथा परिवार को कोई असुविधा नहीं होगी साथ में बच्चे में नियमित जीवन का एक संस्कार उत्पन्न हो जायगा और एक प्रकार से उसकी शिक्षा का प्रारम्भ हो जायगा। यद्यपि देखने में यह बहुत छोटी बात दीखती है किन्तु इसका प्रभाव बहुत पड़ता है।

शरीर की वृद्धि—उत्तम और उपयुक्त भोजन मिलने तथा रोग से मुक्त रहने का बच्चों में सब से महत्वशाली चिह्न उनके शरीर की वृद्धि है। जन्म के पश्चात् दो एक दिन तक उनका शरीर-भार कुछ घटता है, तत्पश्चात् बढ़ता है और फिर सदा बढ़ता ही रहता है। प्रथम सप्ताहों में उनके शरीर-भार की सब से अधिक वृद्धि होती है। तत्पश्चात् वृद्धि की गति कम हो जाती है, किन्तु निरन्तर जारी रहती है। इस कारण बच्चों को प्रत्येक सप्ताह पर तौलना चाहिये। साधारणतया उनका शरीर-भार प्रत्येक सप्ताह में कम से कम २ छटाँक बढ़ना चाहिये। यदि इससे अधिक बढ़े तो वृद्धि को संतोषजनक समझना चाहिए। इससे कम होने पर किसी बात की त्रुटि का संदेह करना उचित है और बच्चे की भली प्रकार डाक्टरी जाँच होनी चाहिये। उसके भोजन आदि के सम्बन्ध में भी विचार करना चाहिये तथा जिस बात की त्रुटि मिले उसकी पूर्ति की जाय।

जन्म के समय बच्चे का शरीर-भार ३½ या ४ सेर होना चहिये। उनकी वृद्धि निम्नलिखित प्रकार से होनी चाहिये :—

आयु	लम्बाई	तौल
जन्म के समय	१९ इंच	३½ सेर
१ सप्ताह	१९ इंच	३½ सेर
२ सप्ताह	१९½ इंच	३ सेर ९ छटाँक
३ सप्ताह	१९½ इंच	३ सेर १२ छटाँक
४ सप्ताह	२० इंच	४ सेर
२ मास	२१ इंच	५ सेर
३-४ मास	२३ इंच	६ से ७ सेर
५ मास	२३.५ इंच	७½ सेर
६ मास	२४ इंच	८ सेर
७ मास	२४.५ इंच	८½ सेर
८ मास	२५ इंच	९ सेर
९ मास	२५.५ इंच	१० सेर
१० मास	२६ इंच	१०¼ सेर
११ मास	२६.५ इंच	१०½ सेर
१२ मास	२७ इंच	११½ सेर

ये अंक इंगलैंड के बच्चों के हैं। हमारे देश में बहुत थोड़े बच्चे जन्म के समय ३½ सेर के होते हैं। अधिकतर बच्चे २½ सेर के लगभग होते हैं। जन्म के पश्चात् भी थोड़े ही बच्चों की इस प्रकार वृद्धि होती है। न उनकी लम्बाई ही इतनी होती है और न शरीर-भार ही किन्तु तो भी यह अंक पथ-प्रदर्शक हैं। हमारे देश के बच्चों के लिये इनको कुछ घटाकर समझना चाहिये। उनकी लम्बाई दो इंच और भार १ या १½ पौंड कम हो तो अनुचित नहीं है। जन्म के समय बच्चे का भार ६ पौंड अवश्य होना चाहिये। ५½ पौंड (२ सेर १२ छटाँक) का बच्चा दुर्बल ही समझा जायगा।

यह देखा गया है कि वृद्धि बराबर एक समान नहीं होती। किसी सप्ताह में अधिक और किसी सप्ताह में कम होती है। किसी-किसी महीने में केवल नाममात्र को होती है। किन्तु किसी महीने में इतनी होती है कि पिछली त्रुटि की पूर्त्ति हो जाती है।

वृद्धि के सम्बन्ध में विशेष ध्यान यह रखना चाहिये कि **बच्चे का शरीर भार बढ़े, वह घटे नहीं।** यदि वह घटता है या कुछ समय तक नहीं बढ़ता तो चिन्ता का कारण है।

प्रथम वर्ष के पश्चात् दूसरे, तीसरे और चौथे वर्षों में बच्चे का भार २ या २½ सेर प्रतिवर्ष बढ़ना चाहिये। इसकी ऊँचाई भी तीन या चार इंच प्रतिवर्ष बढ़नी चाहिये। अगले पाँच छः वर्ष में भी बालक दो या तीन इंच लम्बाई में और २ या २½ सेर भार में प्रति वर्ष बढ़ता है।

दाँत निकलना—निम्नलिखित समय पर दाँत निकलते हैं।

दो बीच वाले नीचे के कुतरने के दाँत (Central incisors) —६ से ७ मास

दो बीच वाले ऊपर के कुतरने के दाँत (Central incisors) —८ से १० मास

दो इधर उधर के ऊपर के कुतरने के दाँत (Lateral incisors) —७ से ६ मास

दो इधर उधर के नीचे के कुतरने के दाँत (Lateral incisors) —१० से १२ मास

चार ऊपर और नीचे के फाड़ने वाले (भेदक Canine) १७ मास

चार ऊपर और नीचे के आगे के कीले (First Molars) १४ मास

चार ऊपर और नीचे के पीछे के कीले (Second Molars)— १८ से २४ मास

ये बीस दाँत अस्थाई होते हैं और दूध के दाँत कहलाते हैं। छठे मास से ये निकलना प्रारम्भ करते हैं और दूसरे वर्ष के अन्त तक प्रायः निकल चुकते हैं। कुछ बच्चों में जल्दी निकलते हैं कुछ में देर से।

इन दाँतों के निकलने के समय में बहुधा बच्चों को कुछ रोग हो जाया करते हैं अथवा अस्वस्थ रहते हैं। कुछ बालकों को हरे-पीले फटे-फटे दस्त आने लगते हैं। कुछ को मन्दाग्नि हो जाती है, पेट फूलता है, डकारें आती हैं। ज्वर रहता है। ऐसी दशा में बच्चों को कोई रेचक वस्तु देकर उनका पेट साफ कर दिया जाय।

अंडी के तेल का एक चम्मच पर्याप्त होता है और तत्पश्चात् दो या तीन दिन तक इसी औषधि को, किन्तु उसकी मात्रा चौथाई करके दिन में तीन बार दी जाय। Steedman's Teething Powder नामक औषधि भी इन दशाओं में बहुत लाभदायक सिद्ध हुई है।

दाँत निकलने के दिनों में बालक के मसूड़ों पर शहद और सुहागा बराबर रगड़ा जाय। इससे दाँत निकलने में सहायता मिलती है। सुहागा पाचन के विकारों को ठीक करता है।

जब निकलने वाले दाँत के कारण बच्चे को बहुत कष्ट मिल रहा हो और दाँत न निकलता हो तो मसूड़े को कटवा देना उचित है। बहुत बार देखा जाता है कि १०४ या १०२ का ज्वर मसूड़ा काटते ही जाता रहता है। इसी प्रकार ऐंठन, दस्त आदि भी मसूड़े के काटने पर ठीक हो जाते हैं।

मसूड़े काटने में बच्चे को कोई विशेष कष्ट नहीं होता। मसूड़े के मांस के नीचे ही दाँत होता है। दाँत के दबाव के कारण मांस कमजोर और पतला हो जाता है। ऐसी दशा में चाकू लगाते ही

मसूड़ा कट जाता है और दाँत निकलने का मार्ग सरल हो जाता है। बच्चे को जो कष्ट होते हैं वे भी तुरन्त ही जाते रहते हैं।

छठे वर्ष के पश्चात् दूध के दाँत गिरना प्रारम्भ होते हैं और उनके स्थान पर स्थाई पक्के दाँत निकलते हैं। छठे वर्ष से लेकर १२ वें वर्ष तक सब दाँत निकल आते हैं। केवल अन्तिम डाढ़, जिसको अक्ल-डाढ़ (Wisdom Tooth) कहते हैं १७ से २५ वें वर्ष तक निकलती हैं। इसके निकलने पर मुँह में ऊपर और नीचे मिलाकर ३२ दाँत हो जाते हैं।

विकास—ज्यों-ज्यों बच्चा बढ़ता है त्यों-त्यों उसका शारीरिक तथा मानसिक विकास भी होता है। शारीरिक विकास तो प्रथम दिन ही से प्रारम्भ हो जाता है यद्यपि मानसिक विकास छठे महीने से पहिले नहीं प्रारम्भ होता है।

जन्म के चार या पाँच दिन के पश्चात् शरीर का भार बढ़ने लगता है और ढाई तीन छटाँक प्रति सप्ताह बढ़ता है। प्रथम वर्ष के अन्त पर वह १०-११ सेर हो जाता है। इसका अर्थ है कि जितने भी बच्चे के अंग हैं वे सभी वृद्धि करते हैं। उनमें नये भाग बनते हैं और उनका आकार बढ़ता है। शरीर की लम्बाई १९ इंच से बढ़कर २७ इंच हो जाती है। वक्ष, हाथ, पाँव टाँगें, बाहु सब ही बढ़ते हैं। किन्तु सिर इतना नहीं बढ़ता, क्योंकि वह पहिले ही शरीर के अन्य भागों की अपेक्षा बड़ा होता है। बच्चे का सिर लम्बाई में सारे शरीर का $\frac{1}{4}$ होता है, युवा में $\frac{1}{8}$ होता है। अर्थात् युवावस्था तक पहुँचने में सिर को इतना नहीं बढ़ना पड़ता जितना कि अन्य भागों को।

शरीर की अस्थियों में भी परिवर्तन होता है। वे लम्बाई में भी बढ़ती हैं। वे दृढ़ भी अधिक होती जाती हैं। जो भाग जन्म के

समय नहीं बने थे वे भी बनने लगते हैं। इस कारण मांस-पेशियों की भी वृद्धि होती है। बच्चा प्रत्येक समय हाथ-पाँव चलाता रहता है इस कारण उनका विकास होता है और वे बलवान भी होते हैं।

रीढ़ की अस्थि, जो २६ छल्लों की बनी होती है, जन्म के समय सीधी होती है। किन्तु ज्यों-ज्यों बच्चा बढ़ता है त्यों-त्यों उसमें भी दो स्थानों में मोड़ आ जाते हैं। बच्चे के सिर उठाने तथा स्वयं उठने-बैठने और खड़े होने के उद्योग करने से इस अस्थि में मोड़ उत्पन्न होते हैं। और इस कारण जिस समय बच्चा चलने फिरने लगता है तो उसमें दो स्थानों में उन्नतोदरता (Convexity) और दो स्थानों पर नतोदरता (Concavity) आ जाती है।

वक्ष में भी परिवर्तन होता है। पहिले वक्ष गोल होता है पसलियाँ भी बिल्कुल गोल होती हैं। किन्तु बच्चे के रोने के कारण, जिनसे उनकी वृद्धि होती है, वक्ष चौड़ा और कुछ चपटा हो जाता है। पसलियों के भी आगे और पीछे के भाग बहुत कुछ चपटे रहते है, पार्श्व में उनमें मोड़ आ जाता है जिसको 'कोण' कहते हैं।

इसी प्रकार अन्य परिवर्त्तन भी होते हैं। किन्तु सबसे अधिक मानसिक परिवर्त्तन होते हैं।

प्रारम्भ में बच्चा केवल सुख और दुख का अनुभव करता है, अथवा यों कहना चाहिये कि सुख और उसके अभाव का अनुभव करता है। यदि वाह्य दशायें सब अनुकूल हों तो बच्चा दुख नहीं प्रतीत करता। यदि वे अनुकूल नहीं होतीं तो वह दुख अनुभव करता है। भूख लगने पर, मूत्र से गीला हो जाने पर वह दुख अनुभव करता है। इसके पश्चात् वह प्रसन्न होना सीखता है। दूध पी कर वह प्रसन्न होता है। दो महीने पर वह कुछ मुस्कराने लगता है।

छठे मास उसको यह अनुभव करने की शक्ति आ जाती है कि उसके शरीर में कहाँ पर पीड़ा हो रही है।

जन्म के समय अथवा कुछ दिन पश्चात् से बच्चा हाथ-पाँव तो चलाया करता है किन्तु वह स्वयं ऐसा नहीं करता। ये क्रियायें उसकी इच्छा के आधीन नहीं होतीं। वे स्वयं ही होती रहती हैं। उसका नाड़ी-मण्डल इतना अपरिपक्व होता है कि शारीरिकि क्रियाओं पर उसका कोई अधिकार नहीं होता।

तीसरे मास में ये क्रियायें कुछ-कुछ उसके अधिकार में आने लगती हैं। वह वस्तुओं को देखकर उनको पकड़ने का प्रयत्न करने लगता है। देखने की शक्ति भी बढ़ जाती है। बच्चा प्रकाश को टकटकी लगाकर देखने लगता है। सुनने की शक्ति भी बढ़ती है। नौ महीने तक यह सब शक्तियाँ बढ़ती जाती हैं, बच्चा वस्तुओं को पकड़ने और सरकने का प्रयत्न करने लगता है।

यह पहिले ही कहा जा चुका है कि बच्चे की शिक्षा इसी समय से आरम्भ हो जाती है। दोनों समय नियत समय पर मलत्याग करने की आदत डालना ही शिक्षा का प्रारम्भ है। दूसरी आदतें भी बच्चे में शनैः शनैः पड़ने लगती हैं और उसकी समझने की शक्ति भी बढ़ती जाती है।

इस समय में—जन्म से नौ मास तक—बच्चे की पाचनशक्ति कमजोर होती है और उसका नाड़ी-मण्डल भी बड़ा ही अस्थिर होता है। इस कारण बच्चों को पाचन के विकार तथा रोग सहज में हो जाते हैं। और नाड़ी-मण्डल के अस्थिर होने के कारण बांयठे (Covulsion), तनिक से विकार से ज्वर का बहुत बढ़ जाना आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। इस कारण इस समय में बहुत सावधानी की आवश्यकता है।

नौ मास में बच्चा खड़ा होना प्रारम्भ कर देता है और तीन वर्ष तक उसकी भागने दौड़ने की शक्ति का पर्याप्त विकास हो जाता है। इस कारण और सब अंग भी इस विकास में भाग लेते हैं। सबों की वृद्धि होती है उनका भार बढ़ता है तथा आकार भी बढ़ता है। इसी समय में बच्चा बोलना भी सीखता है। पहिले पापा, मामा आदि साधारण शब्द कहता है। फिर और शब्द भी बोलने लगता है। कुछ समय तक बोलने में तुतलाता है। फिर ठीक बोलने लगता है। तीसरे वर्ष के अंत तक बालक प्रायः ठीक-ठीक बातचीत करने लगते हैं।

मस्तिष्क की वृद्धि इस काल में और भी अधिक होती है। सारी वृद्धि, जितनी भी आयु पर्यन्त तक होने वाली है, उसका ¾ भाग तीसरे वर्ष तक समाप्त हो चुकता है। साथ में विचार-शक्ति भी बढ़ती है, यद्यपि इतनी अधिक नहीं।

जहाँ शरीर के आकार और प्रकार में वृद्धि होती है वहाँ शारीरिक क्रियाओं में भी परिवर्तन होता है। मुख में मौखिक रस (Saliva) बनने लगता है और आमाशयिक रस (Gastric Juice) में हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (Acid Hydrochloric) की मात्रा बढ़ जाती है। अतएव इस समय बच्चे को कार्बोहाइड्रेट दिया जा सकता है और प्रोटीन की मात्रा भी बढ़ाई जा सकती है। वास्तव में इन अवयवों को बढ़ाना आवश्यक है। इनके संबंध में पहिले विचार किया जा चुका है।

बच्चे की विचार-शक्ति भी बढ़ती है। वह समझने लगता है और तीसरे वर्ष के अन्त तक अपने भावों को भी प्रकट करने लगता है। उसके मन में इस समय प्रत्येक बात को जानने की इच्छा उत्पन्न होने लगती है और अनेक प्रकार की भावनायें भी उठती हैं

जिनके कारण वह अकस्मात् कुछ काम कर बैठता है, किधर ही को चल देता है, किसी भी वस्तु को उठाकर मुँह में रख लेता है।

इस समय जहाँ तक बच्चे की सद्भावना हो उसको पूरा करना चाहिये। यदि वह कोई अनुचित काम करने जा रहा हो तो उसको रोकना उचित है। यह उतना ही आवश्यक है जितना उसकी उचित इच्छा का पूरा करना। बच्चे की आदतें इसी समय से बनने लगती हैं। उचित आदतों के बनाने में बच्चों को उत्साहित करना चाहिये। किन्तु अनुचित आदतों से रोकना चाहिये।

इस अवस्था में भी बच्चों को रोग सहज में हो जाते हैं। बच्चों में आदत होती है कि वे जो कुछ भी पाते हैं मुँह में रख लेते हैं। इससे रोगों के जीवाणु उनके शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं। अतः देखरेख आवश्यक है।

इस आयु में भोजन में परिवर्त्तन और परिवर्धन दोनों करने की आवश्यकता है। पाचक रसों की प्रबलता बढ़ जाती है। बच्चे के शरीर का यह वृद्धिकाल होता है। अतएव उनकी शारीरिक आवश्यकताओं को देखते हुये भोजन का आयोजन करना चाहिये यदि उसको आवश्यकता से कम भोजन मिलेगा तो बालक की वृद्धि रुक जायगी।

तीन वर्ष के पश्चात् बड़े महत्व का काल प्रारम्भ होता है। तीन वर्ष से बारह वर्ष तक का वह समय है जो सारे जीवन की नींव है। इस अवस्था में बालक में शारीरिक तथा मानसिक विकास बड़ी शीघ्रता से होता है जिससे शैशवावस्था से निकल कर बालक युवावस्था में पदार्पण करने के लिये तैयार हो जाता है। उसके शारीरिक अंगों की वृद्धि होती है, शारीरिक क्रियायें भी प्रायः पूर्ण हो जाती हैं और युवावस्था के पूर्व लक्षण प्रकट होने लगते हैं। छः वर्ष पर शरीर की लम्बाई दुगनी हो जाती है। बारह वर्ष की अवस्था

में एक फुट लम्बाई और भी बढ़ जाती है। शरीर भार भी बराबर बढ़ता है।

इस अवस्था में बालक के शरीर की मांस-पेशियाँ बड़ी क्रियावान होती हैं और नाड़ी-मण्डल भी बड़ा ही सक्रिय और उद्विग्न रहता है। बालक सदा कुछ-न-कुछ सोचता ही रहता है और इस कारण वह सदा किसी न किसी काम में लगा रहता है। उसकी मांस-पेशियाँ प्रत्येक समय कुछ काम करने को उद्यत रहती हैं। यद्यपि प्रथम इन कामों में कोई क्रम नहीं होता, बच्चा यतस्ततः कुछ भी करने लगता है। किन्तु आगे चल कर ये क्रियायें क्रमबद्ध और शृङ्खलायुक्त हो जाती हैं।

बच्चे जो काम इस समय में करते हैं उन पर ध्यान रखने की आवश्यकता है। इस अवस्था में बच्चों के काम उनकी अस्त-व्यस्त भावनाओं के फल होते हैं। उनमें परिणाम सोचने की शक्ति नहीं होती। इस कारण वह जो कुछ करें उसके नियन्त्रण की आवश्यकता है। नियन्त्रण का यह अर्थ नहीं है कि उनको रोक दिया जाय। रोकने का बालक पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। किन्तु जो कुछ वे कर रहे हों, वह अनुचित हो तो उनको बीच ही में से मोड़कर इस प्रकार किसी दूसरे काम में लगा दिया जाय कि उनको ऐसा करना प्रतीत न हो। यदि वे ऐसे स्थान की ओर दौड़ रहे हैं जो ऊँचा-नीचा है, जहाँ चोट लगने का डर हो, तो उनको उस ओर से मोड़कर किसी दूसरे उपयुक्त स्थान की ओर जाने दिया जाय। यदि वह कोई ऐसा खेल खेल रहे हैं जिससे उनके मारपीट या चोट खा जाने का डर है तो उनको चतुराई के साथ दूसरे खेल में लगा दिया जाय। किन्तु खेल न बन्द किया जाय।

बालकों में जिज्ञासा बड़ी प्रबल होती है। वे जिस वस्तु को देखते हैं उसी के बारे में प्रश्न करते हैं। वे उसके सम्बन्ध में सब

कुछ जानना चाहते हैं। उनकी यह जिज्ञासा किसी प्रकार भी कम न की जाय। उनके प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देना चाहिए। उनकी प्रत्येक शङ्का का पूरा समाधान होना चाहिए। उनको इस बात के लिये उत्साहित करना चाहिए कि वे अधिक ज्ञान प्राप्त करें। उनसे ऐसे-ऐसे प्रश्न पूछने चाहिये जिससे उनको स्वयं ही ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न हो। ऐसा करने से उनके ज्ञान की वृद्धि होगी। और साथ में यह भी पता लग जायगा कि बालक की रुचि किस ओर है। जिस विषय में उसका मन लगता है उस ही ओर को उत्साहित करने से बालक उस बात को अत्यन्त सहज में ग्रहण करता है। ऐसा करने से बालक का जीवन सफल बनाया जा सकता है। शिक्षा की कुञ्जी यही है।

भोजन—इस काल में बालक के भोजन का बहुत ध्यान रखना चाहिये। उसकी शारीरिक वृद्धि बड़ी शीघ्रता से होती है। वह दौड़ता—कूदता फिरता है। प्रत्येक समय वह कुछ-न-कुछ किया ही करता है। इसमें शक्ति का व्यय होता है। इस क्षति के लिए भोजन आवश्यक होता है। साथ में जो बालक के शरीर में वृद्धि हो रही है उसके लिये भी उपयुक्त भोजन की आवश्यकता है।

अतएव भोजन ऐसा होना चाहिये जो इन आवश्यकताओं को पूरा कर सके और उसकी मात्रा भी पर्याप्त होनी चाहिये। ३ से १२ वर्ष तक की अवस्था में बालक युवा व्यक्ति की अपेक्षा दोनों के शरीर भार समता को ध्यान में रखते हुये, ड्योढ़ा या दुगना भोजन करता है।

प्रोटीन—भोजन में प्रोटीन और वसा दोनों की अधिकता होनी चाहिये—विशेषकर प्रोटीन की कार्बोहाइड्रेट की भी आवश्यकता होती है। प्रोटीन अंडे और मांस से मिल सकती है। शाकाहारी को प्रोटीन

दाल से मिलती है। किन्तु जितनी बच्चे को आवश्यक होती है उतनी नहीं मिल पाती और न वह उत्तम ही होती है। मांस इतनी आवश्यक वस्तु नहीं है। किन्तु अंडा इस अवस्था के लिये बहुत ही उपयोगी है। अंडे से एक जन्तु का शरीर बनता है। इस कारण उसमें शरीर बनाने वाले अवयव ऐसी दशा में उपस्थित रहते हैं कि शरीर तुरन्त ही उनका आत्मीकरण कर लेता है। दाल का प्रोटीन इतने सहज में नहीं पचता। बिना उबाले या पकाये हुये उसका प्रोटीन पचता भी नहीं। उबालने से दाल की विटेमीनों का नाश होता है यद्यपि अन्य वस्तुओं द्वारा विटेमीन की कमी पूरी की जा सकती है। अंडे का प्रोटीन उबालने पर भी ज्यों का त्यों रहता है। आधा उबालने में, उसकी विटेमीन का बहुत थोड़ा भाग नष्ट होता है जो नहीं के समान है। आधा उबालने की विधि यह है कि उबलते हुये जल में अंडे को दो मिनट तक रख कर उसको निकाल लेते हैं। इससे भीतर का श्वेत भाग तो जम जाता है। किन्तु पीला भाग केवल कुछ गाढ़ा हो जाता है।

वसा—बालक को वसा मक्खन के रूप में देना चाहिये। लोनी मक्खन से भिन्न होती है और दही को मथ कर निकाली जाती है। मक्खन ताजा दूध से क्रीम बना कर तैयार किया जाता है इसमें दूध के समस्त विटेमीन और फर्मेन्ट उपस्थित रहते हैं और इस कारण यह अधिक लाभदायक होता है।

बालक को उसकी आयु के अनुसार मक्खन की मात्रा दी जा सकती है। ६ वर्ष के बालक के लिये ½ औंस, अर्थात् ¼ छटाँक और दस या बारह वर्ष के बालक के लिये १ औंस मक्खन अधिक नहीं है। यदि बालक इसको भली-भाँति पचा लेता है तो इसकी मात्रा बढ़ाई जा सकती है।

विटेमीन—बालक के भोजन में फलों की मात्रा भी पर्याप्त रहनी चाहिये। यह आवश्यक नहीं है कि उसको केवल सन्तरे, अंगूर ही दिये जायँ। यद्यपि सन्तरे का रस अत्युत्तम वस्तु है, फलों में, विशेषकर बच्चे के लिये सर्वश्रेष्ठ है, किन्तु उसका मूल्य सबकी सामर्थ्य के बाहर है। जो लोग सन्तरा दे सकते हैं वे अवश्य ही उसको बच्चे को दें। किन्तु अन्य व्यक्तियों द्वारा जो फल भी मोसम पर मिलते हों वे सब दिये जायँ। खरबूजा, आम, लीची, ककड़ी, नासपाती, केला, सब लाभदायक हैं और विटेमीन प्रदान करते हैं। पौंड़ा या गन्ना बहुत लाभदायक वस्तु है। बालकों को शुष्कफल भी दिये जायँ। बादाम अत्यन्त हितकर वस्तु है। इसमें प्रोटीन और वसा दोनों पर्याप्त रहते हैं। अखरोट, काजू, चिरौंजी में वसा अधिक होती है। शुष्क फल ताप भी अधिक उत्पन्न करते हैं। इस कारण इनका प्रयोग जाड़े में किया जाता है। बादाम जल में भिगो कर और उनका लाल छिलका उतार कर गरमी के मौसम में भी मिसरी के साथ खाये जाते हैं। अथवा उनकी ठंढाई बना कर दी जा सकती है।

वास्तव में बच्चे की शिक्षा ८ या दस मास की आयु ही पर प्रारंभ हो जाती है। शौच के समय की आदत डालना उसकी शिक्षा ही है। दो वर्ष तक तो वह बहुत कुछ समझने लगता है। अतएव इसी समय से शिक्षा प्रारंभ हो जाती है। बच्चे की वास्तविक शिक्षा घर ही में प्रारंभ होती है और वही उसका उचित उपयुक्त शिक्षा-क्षेत्र है। और बच्चे की माता ही उसकी सबसे बड़ी शिक्षक है। इस कारण माता का सुशिक्षिता होना अत्यन्त आवश्यक है। यों तो परिवार के सब ही व्यक्ति बच्चे की शिक्षा में भाग लेते हैं और उन सबको इस ओर अपना उत्तरदायित्व समझ

कर इस प्रकार आचरण करना चाहिये कि उनके द्वारा बच्चे के ज्ञान की अभिवृद्धि हो और उसकी आदतें उत्तम बनें।

शिक्षा—बालक की शिक्षा प्रायः ६ वर्ष पर प्रारम्भ कर दी जाती है। अर्थात् उसको स्कूल भेजा जाता है। यद्यपि बालकों के शिक्षा-क्रम में बहुत उन्नति हुई है तो भी अभी तक बहुत कुछ अभीष्ट है। बालकों की शिक्षा सदा खेल द्वारा होनी चाहिये। वे खेलते रहें और खेल ही के द्वारा सीखते रहें। Montessori System की यही विशेषता है। बच्चों को कुछ रटवाया नहीं जाता। उन पर किसी प्रकार का भार नहीं पड़ता। वह खेलते-खेलते ही ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं।

६ से ८ वर्ष के बच्चों को किसी पुस्तक से नहीं पढ़ाना चाहिये केवल खेल और कहानियों द्वारा उनको शिक्षा दी जाय। आठ वर्ष के पश्चात् इस प्रकार की शिक्षा प्रारम्भ की जा सकती है। किन्तु आठ वर्ष के बालक को एक स्थान पर बिठाकर दो घंटे से अधिक न पढ़ाया जाय। और न घर ही के लिये कुछ काम दिया जाय। ज्यों-ज्यों आयु बढ़ती जाय त्यों-त्यों काम भी धीरे-धीरे बढ़ाया जाय। किन्तु यह सदा ध्यान रखा जाय कि शिक्षा के साथ में खेल का पर्याप्त भाग मिला रहे जिससे बालक के स्वास्थ्य और बुद्धि पर किसी प्रकार का प्रभाव न पड़े—उनको हानि न पहुँचे। शिक्षा स्वास्थ्य को खोकर नहीं होनी चाहिये।

शिक्षा का अभिप्राय केवल परीक्षायें पास करवाना नहीं होता। उसका प्रयोजन बालक को देश का एक उत्तम नागरिक बनाना है। शिक्षा का काम प्रत्येक बालक में जो ओज छिपा हुआ है, उसका विकास करना है। शिक्षा के द्वारा बालक के भीतर जितने भी गुण हों उनका पूर्ण उदय होना चाहिये। उसका चरित्र बनाना, सन्मार्ग पर चलाना, सांसारिक आवश्यकताओं के देखते हुये अनुकूल बनाना

जिससे बालक आगामी जीवन में संसार के संग्राम में विजयी हो सके, और साथ ही देश और समाज के लिये उपयोगी बने और उनके उत्थान का कारण हो, ये सब शिक्षा के उद्देश्य होने चाहिये। आजकल की शिक्षा प्रणाली में बहुत त्रुटियाँ हैं जिनके दूर किये बिना देश का कभी कल्याण नहीं हो सकता।

आदतें—इसकी ओर पहिले ही ध्यान दिलाया जा चुका है। यह समय है जब बालक की आदत बनाई जा सकती है। इस समय की बनी हुई आदत चिरस्थाई होती है। प्रातःकाल उठना, उठकर शौच जाना, दातुन या मञ्जन से मुँह को शुद्ध करना तथा स्नान करने की आदत प्रारम्भ ही से डालनी चाहिये। कुछ दिनों इसमें कठिनाई होगी। किन्तु फिर बालक उनका अभ्यस्त हो जायगा और स्वयं ही सब कर्म समय से करने लगेगा। इन नित्य-कर्मों को समय पूर्वक करने से स्वास्थ्य उत्तम रहता है।

छोटे बच्चों को बिस्तरों में मूत्र त्याग करना, मिट्टी खाना, नाखून कुतरना, मुँह में उँगली देना, अँगूठा चूसना आदि आदतें पड़ जाती हैं। इनको पहिले तो पड़ने ही न देना चाहिये। यदि पड़ जायँ तो उनको छुड़ा देना आवश्यक है।

सत्यवादी—बालक में सच बोलने की आदत डालना बहुत ही आवश्यक है। जब बालक में तनिक सी भी समझ आ जाय तभी से उनको 'नास्ति सत्यात्परो धर्मः' की शिक्षा दी जानी चाहिये। बालक स्वभावतः सत्यवादी होते हैं। केवल परिस्थितियाँ उनको झूठ बोलना सिखा देती हैं। सबसे बड़ा कारण भय होता है जिसके कारण वे झूठ बोलना सीख जाते हैं। जब वे यह समझते हैं कि हमने यह अनुचित कर्म किया है और इसके लिये हमको दंड मिलेगा तो वे झूठ बोलते हैं। यदि उनको दंड का भय न हो

। वे झूठ न बोलें। इस कारण यदि वे कोई अनुचित काम कर ो बैठें तो उनको मारना-पीटना कभी न चाहिये। और न मारे- ट का भय ही दिखाना चाहिये। उनको प्रेम के साथ समझाना ाहिये। और सच बोलने पर इनाम देना चाहिये। भाँति-भाँति ो कहानियाँ सुना कर उनको सत्य की महिमा सुनानी चाहिये। ारम्भ ही से ऐसा करने से उसको सहज ही में सत्यवादी बनाया जा सकता है।

आचार-व्यवहार—इस प्रकार आचार-व्यवहार की शिक्षा भी बाल्यकाल ही से दी जाय। बड़ों के प्रति किस प्रकार वे व्यवहार करें, सम वयस्क के साथ कैसे मिलें, तथा छोटों पर किस प्रकार प्रेम और दया दर्शावें, इनकी भी शिक्षा होनी चाहिये। बच्चे कहानियों को बड़े प्रेम से सुनते हैं उनको सारी शिक्षा कहानियों द्वारा ही देनी चाहिये। उनको धार्मिक व्यक्तियों की कहानियाँ सुनाई जायँ। हरिश्चन्द्र, रामचन्द्र, कृष्ण आदि के उपाख्यानों से छोटी-छोटी घटनायें उनको बताई जायँ। किन्तु उनको दुख उत्पन्न करने वाली या भय दिलाने वाली बातों को सुनाना ठीक नहीं है। इससे उनके कोमल चित्त पर बुरा प्रभाव पड़ता है। धार्मिक ग्रन्थों से इस प्रकार के छोटे-छोटे उपाख्यानों को चुनना चाहिये जिससे बालकों को शिक्षा भी मिले तथा उनका मनोरंजन भी हो। इसी प्रकार स्वार्थ-त्याग, परोपकार, देश प्रेम, सेवा, दुर्बल और पीड़ितों को सहायता देना आदि गुणों का बालकों में उपयुक्त कहानियाँ और दृष्टान्त द्वारा समावेश करना चाहिये।

बालक में स्वावलम्बिता का गुण अवश्य ही होना चाहिये। उसमें आत्म-विश्वास हो। वह यह समझे कि मैं अमुक काम के योग्य हूँ और उसको अवश्य कर सकता हूँ। अपने को हीन

समझना, जिसको Inferiority Complex कहते हैं, अत्यन्त घातक है। प्रारम्भ ही से बच्चे को ऐसी शिक्षा दी जाय कि उसमें आत्म-बल उत्पन्न हो जावे। उसमें आत्म-दृढ़ता का गुण आ जावे। सांसारिक जीवन के लिये यह गुण आवश्यक है। जिन बालकों में आत्मबल और आत्मविश्वास होते हैं वह संसार में कुछ काम कर दिखाते हैं। वे देश और जाति का उत्थान करने वाले होते हैं। इन गुणों को बच्चों में उद्भूत करना अत्यन्त आवश्यक है। कौशल और धैर्य के साथ सब हो सकता है।

बालकों को भय दिखाना अथवा हुक्म देकर उनको किसी काम करने से रोक देना अनुचित है। इससे उनका आत्मबल नष्ट होता है और चरित्र का विकास नहीं हो पाता।

खेल तथा खिलौने—खिलौने बालकों के लिये बड़ी आवश्यक वस्तु हैं। वह तीन या चार मास की अवस्था ही से, जब से वह किसी वस्तु को पकड़ सकता है, खेलने लगता है। ऐसी अवस्था में वह उस वस्तु को देख कर और उसकी ध्वनि सुनकर सुख प्रतीत करता है। इसलिये इस अवस्था पर बच्चों को खेलने के लिये झुनझुने दिये जाते हैं जो बजते भी हैं। रोता हुआ बालक झुनझुने का शब्द सुन कर शान्त हो जाता है।

बच्चों का स्वभाव होता है कि वे जिस वस्तु को पकड़ लेते हैं उसको मुँह में रख लेते हैं। इस कारण इन खिलौनों पर कोई ऐसी वस्तु न लगी हो जिनसे बच्चों को हानि पहुँच सके।

जब बच्चा कुछ बड़ा होता है और समझने लगता है उस समय उसको ऐसे खिलौने देने चाहिये जिनसे उसका ज्ञान बढ़े। वस्त्र या लकड़ी के बने हुये घोड़े, हाथी, रीछ, गौ आदि उपयुक्त खिलौने हैं। किन्तु ये खिलौने नरम होने चाहिये जिससे वह बच्चे के चुभ

न सकें। लकड़ी के खिलौने में यह दोष होता है कि वे अत्यन्त कठोर होते हैं। वस्त्र के खिलौने उत्तम होते हैं जैसे गुड़िया। इन खिलौनों से बच्चों की विचार-शक्ति बढ़नी चाहिये। और उनके द्वारा बालक की कल्पना-शक्ति जागृत होनी चाहिये।

कुछ और अधिक अवस्था होने पर तीन या ४ वष पर बच्चों को ऐसे खिलौने दिये जायँ जिनसे उनकी कल्पना तथा विचार-शक्ति उन्नत हो। चाभी से चलाने वाले खिलौने—रेलगाड़ी, मोटर, वायुयान तथा अन्य ऐसे खिलौनों से बालक के चित्त में उस यन्त्र की बनावट जानने की उत्सुकता उत्पन्न होती है तथा वह यह समझता है कि यह यन्त्र इस प्रकार चलता है, अमुक काम में आता है, इसकी अमुक प्रकार की गति-विधि है। उसकी कल्पना जागृत हो जाती है और विचारने लगता है। यदि वालक खिलौने के सम्बन्ध में कोई प्रश्न करे तो उसका पूरा समाधान किया जाय। उसको प्रत्येक बात बताई जाय।

इससे भी अवस्था अधिक होने पर ६ या ७ वर्ष के वालक को ऐसे खिलौने दिये जायँ जो तोड़ कर फिर से बनाने पड़ेंगे। इस प्रकार के बहुत से चित्रों के ब्लाक आते हैं। छः या नौ लकड़ी के ब्लाक को जिन पर चित्र बने रहते हैं, उचित प्रकार से जोड़ने से घोड़े, रेलगाड़ी, कोई दृश्य आदि सम्पूर्ण तस्वीर बन जाती है। इस प्रकार के बड़े-छोटे बहुत तरह के खिलौने आते हैं। इनसे बालकों की विचार-शक्ति बढ़ती है और उनकी जिज्ञासा की भी वृद्धि होती है। इसी प्रकार के लकड़ी के टुकड़ों या लोहे की सलाखों के खिलौने आते हैं जिनमें छेद रहते हैं और साथ में कील, पेंच, बोल्ट, रिंच सब रहते हैं। बोल्ट और नट से जोड़ कर इन छोटी-छोटी सलाखों से छोटे-छोटे यन्त्र तैयार हो जाते हैं। Mechano

नामक इसी प्रकार का खिलौना होता है और उसके छोटे-
प्रकार के सेट आते हैं।

जब बालक स्कूल जाने लगता है तो उसको ऐसे खे
आवश्यकता होती है जिसको कई बालक मिल कर खेलें।
आदि इसी प्रकार के खेल हैं। फुटबाल, क्रिकेट आदि
श्रेणी के हैं। ये आठ-दस वर्ष से लेकर युवावस्था अथवा उ
अधिक अवस्था वालों द्वारा खेले जाते हैं। इन खेलों में
को संगठन और नियन्त्रण (Discipline) की बहुत बड़ी
मिलती है। वे सीखते हैं कि किस प्रकार मिल कर कोई काम
जाता है। संगठन किस प्रकार होता है और उससे क्या ल
प्रति-स्पर्धा का भाव भी वहीं उत्पन्न होता है जो बालक को
करने में अत्यन्त सहायक होता है। भिन्न-भिन्न क्लास वाले
में मैच होता है उसका यही अभिप्राय है। अतएव प्रत्येक
को खेल में भाग लेने के लिये उत्साहित करना चाहिये।

धार्मिक शिक्षा—बालक के लिये धार्मिक शिक्षा
आवश्यक है। यों तो यह शिक्षा घर ही पर से प्रारम्भ हो
चाहिये। किन्तु स्कूलों में भी इसके लिये विशेष प्रबन्ध
चाहिये। आजकल की शिक्षा प्रणाली में यह बहुत बड़ी त्रुटि
उसमें धार्मिक शिक्षा का नितान्त अभाव है। चरित्र का
धार्मिक शिक्षा ही का काम है।